राष्ट्रीय हिन्दी दैनिक

Www.gauravshalibharat.com

गौरवशाली भारत

नई दिल्ली से प्रकाशित

वर्ष : 12
अंक : 112
पृष्ठ : 08
नई दिल्ली
शनिवार 05 नवंबर 2022
मूल्य : 1.50/-
RNI No .DELHIN/2011/38334

मुख्य अपडेट

पेज 3 दिल्ली में जरूरी सेवाओं के अलावा अन्य ट्रकों की एंट्री पर रोक, सीएनजी-इलेक्ट्रिक ट्रकों को छूट : गोपाल राय

पेज 5 लखनऊ : घर से पड़ोसी के खेत पर किशोरी की गला रेतकर हत्या, पुलिस बोली- प्रेम प्रसंग में वारदात

पेज 7 बीच राह मौलवियों के सिर से पगड़ी उतार कर फेंक रहीं ईरानी महिलाएं, वीडियो भी बनाए

बस-कार में टक्कर, 11 की मौत

मरने वालों में 5 लोग महदगांव के एक ही परिवार के

बैतूल। देवउठनी ग्यारस मनाने अपने घर लौट रहे 11 लोगों की बस और टवेरा की टक्कर में मौत हो गई। मरने वालों में 5 लोग महदगांव के एक ही परिवार के थे। पुलिस ने बताया कि तेजस जावसकर का पूरा परिवार काल के गाल में समा गया। अन्य 5 लोग चिखलार गांव के थे। दोनों गांव में मृतकों के शव पहुंचने के बाद मातम पसर गया है। पुलिस ने बताया कि मध्यप्रदेश के बैतूल-अमरावती स्टेट हाईवे पर गुरुवार रात करीब 2 बजे खाली यात्री बस और टवेरा कार की टक्कर हो गई। कार सवार 11 लोगों की मौके पर ही मौत हो गई। मृतकों में 6 पुरुष, 3 महिलाएं और 2 बच्चे शामिल हैं। सभी शवों को झल्लार के प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र पहुंचाया गया, जहां उनका पोस्टमॉर्टम करवाया गया।

जानकारी के अनुसार, बस बैतूल की तरफ आ रही थी, जबकि कार मजदूरों को लेकर परतवाड़ा की ओर से आ रही थी। झल्लार गांव से करीब एक किलोमीटर दूर बस पहुंची ही थी कि दोनों में सीधी टक्कर हो गई। टक्कर इतनी भीषण थी कि कार सवार सभी 11 लोगों की मौके पर ही मौत हो गई। पुलिस ने लोगों की मदद से 11 में से 7 शव निकाल लिए। बाकी 4 शव कार काटकर निकाले। एसपी सिमाला प्रसाद ने बताया कि झल्लार गांव के मजदूर 20 दिन पहले अमरावती के कलमता गांव गए हुए थे। गुरुवार रात 9 बजे कार से वहां से निकले थे। रात करीब सवा 2 बजे ये झल्लार गांव से एक किमी दूर थे, तभी हादसा हुआ। ऐसी आशंका है कि ड्राइवर को झपकी आ गई होगी, जिससे टवेरा सीधे बस से टकरा गई। मृतकों के परिजन को सहायता राशि दिलवाने का प्रयास किया जाएगा।

हादसे में इनकी हुई मौत

अमर (35) पिता साहब लाल धुर्वे, मंगल (37) पिता नन्हे सिंह उईके, नंदकिशोर धुर्वे (48), शामराव (40) पिता राम राव झरबड़े, रामकली (35) पति शामराव, सभी निवासी चिखलार। किशन जावलकर (32), कुसुम (28) पति किशन जावलकर, अनारकली (35) पति केशा जावलकर, संध्या (5) पिता केशा जावलकर, अभीराज (1.5) पिता केशा जावलकर, विकास (25) पिता मधु विश्वकर्मा, सभी निवासी महतगांव।

मृतकों के परिवारों को मुआवजा

कलेक्टर अमनवीर सिंह बैंस ने बताया कि कार सवार सभी 11 लोगों की मौत हो गई है। इनमें 2 बच्चे भी शामिल हैं। तत्काल पोस्टमॉर्टम के लिए निर्देशित किया गया है। बॉडी को उनके गांव पहुंचाने की व्यवस्था की गई है। अंत्येष्टि राशि के लिए भी कार्रवाई कर दी गई है। ट्रैफिक एक्सीडेंट में जो मुआवजा राशि का प्रावधान है, वह भी परिवार को तत्काल स्वीकृत करने के लिए कहा है।

हादसे में पूरा परिवार खत्म

इस हादसे में तेजस जावसकर का पूरा परिवार ही मौत का शिकार हो गया। तेजस की पत्नी अनारकली, भाई किशन, बहू कुसुम, 5 साल की भतीजी संध्या और डेढ़ साल का भतीजा अभिराज की जान चली गई।

ग्लोबल एलुमनी मीट

उपराष्ट्रपति जगदीप धनखड़ चंडीगढ़ में पंजाब विश्वविद्यालय में तीसरे ग्लोबल एलुमनी मीट में दीप प्रज्वलित करते हुए।

पहलवान सुशील कुमार की अंतरिम जमानत याचिका मंजूर

नयी दिल्ली। दिल्ली की एक अदालत ने ओलंपियन पहलवान सुशील कुमार की अंतरिम जमानत याचिका को शुक्रवार को मंजूरी दे दी।

सुशील कुमार के वकील ने अदालत में एक आवेदन पेश कर बताया कि सुशील की पत्नी का स्वास्थ्य खराब होने के कारण उसे तीन सप्ताह की अंतिरम जमानत देने का आग्रह किया। उन्होंने अदालत को बताया कि सुशील की पत्नी अस्वस्थ होने के कारण बिना किसी सहायता के चल फिर नहीं सकती है तथा डॉक्टर ने सलाह दी है कि सर्जरी के बाद उन्हें कम से कम दस दिन के पूर्ण आराम की आवश्यकता होगी।

सरकारी वकील ने जमानत का विरोध करते हुए कहा कि सुशील का अपराध जघन्य प्रकृति का है और वह पहलवान सागर धनखड़ की निर्मम हत्या से जुड़ा है। सुशील की पत्नी अपने माता-पिता के साथ रह रही है और उसकी देखभाल करने के लिए उसके परिवार में अन्य सदस्य हैं। उन्होंने कहा है कि वह मुख्य आरोपी हैं और मामला महत्वपूर्ण चरण में है। आरोपी की नियमित जमानत याचिका दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गई थी। यह एक बहुत ही चर्चित मामला है और गवाहों को प्रभावित करने और धमकी देने की पूरी संभावना है।

मोरबी हादसे में नगर पालिका का अफसर सस्पेंड

हादसे के 7 दिन बाद किसी सरकारी अधिकारी के खिलाफ लिया गया एक्शन

मोरबी। गुजरात के मोरबी शहर में में हुए पुल हादसे में चीफ फायर ऑफिसर संदीप सिंह झाला को लापरवाही के आरोप में शुक्रवार को निलंबित कर दिया गया।

किसी सरकारी अधिकार के खिलाफ प्रशासन की यह पहला बड़ा एक्शन है। गुजरात पुलिस ने गुरुवार को मोरबी नगरपालिका के चीफ ऑफिसर झाला से 4 घंटे से अधिक समय तक पूछताछ की थी।

कंपनी से स्पष्टीकरण मांगा

गुजरात पुलिस ने मोरबी पुल के रेनोवेशन की जिम्मेदारी दिए गए एग्रीमेंट को लेकर घड़ी निर्माता कंपनी ओरेवा ग्रुप से भी स्पष्टीकरण मांगा है। इस मामले को लेकर मंगलवार को हुई सुनवाई में कोर्ट को बताया गया था कि ब्रिज के रेनोवेशन की जिम्मेदारी जिस कॉन्ट्रैक्टर को दी गई थी, वह इस तरह के काम कराने के योग्य नहीं हैं।

हादसे में 135 लोगों की मौत

गौरतलब है कि मोरबी में मच्छू नदी के ऊपर ब्रिटिश काल में बना सस्पेंशन पुल रविवार की शाम गिर गया था। इस घटना में 135 लोगों के मारे जाने की पुष्टि हुई है। हादसे में मरने वालों में बड़ी संख्या महिलाओं और बच्चों की रही। इस घटना को लेकर पहले ही गुजरात पुलिस नौ लोगों को गिरफ्तार कर चुकी है।

इनमें पुल के टिकट कलेक्टर से लेकर ठेकेदार तक शामिल हैं। गिरफ्तार किए गए आरोपियों के खिलाफ आईपीसी की धारा 304 (गैर इरादतन हत्या) के तहत मुकदमा दर्ज किया गया है।

अधिकारियों की तरह अब जवानों को भी मिलेगा पेंशन लाभ

नयी दिल्ली। तीनों सेनाओं में कम से कम 10 वर्ष की सेवा के बाद सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम में नौकरी पाने वाले जूनियर कमीशन अधिकारी तथा जवानों को भी अब प्रो राटा यानी यथानुपात पेंशन का लाभ मिलेगा। अब तक केवल अधिकारियों को ही इस तरह की पेंशन का लाभ मिल रहा था। रक्षा मंत्रालय ने शुक्रवार को एक वक्तव्य जारी कर कहा कि इस पेंशन के दायरे में वहीं जूनियर कमीशन अधिकारी और जवान आएंगे जो 10 वर्ष की सेवा के बाद सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में चले गए और उन्हें वही स्थाई कर दिया गया। रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने भूतपूर्व सैनिक विभाग के इस आशय के प्रस्ताव को मंजूरी दे दी है। मंत्रालय ने कहा है कि जिन जवानों की सेना में सेवा की अवधि 10 वर्ष से कम है उन्हें इस पेंशन का लाभ नहीं मिलेगा।

मां-बाप और दो बेटों का मर्डर कर सुसाइड किया

पिता को कुल्हाड़ी से मारा, बाकी को नींद की गोलियां देकर टैंक में फेंका

जोधपुर। जोधपुर में एक युवक ने पूरे परिवार की हत्या कर खुद भी सुसाइड कर लिया। उसने पिता को कुल्हाड़ी से मारा और मां व दो बेटों को नींद की गोलियां खिलाकर टैंक में फेंक दिया। पुलिस की शुरुआती जांच में सामने आया है कि आरोपी की पत्नी परिवार से अलग रहने की जिद कर रही थी, जिसकी वजह से वह परेशान था।

यह दिल दहला देने वाली वारदात लोहावट के पीलवां गांव की है। किसान शंकर लाल (38) ने गुरुवार शाम पहले अपने पिता सोनाराम (65) पर कुल्हाड़ी से हमला कर घायल कर दिया और मौके से भाग गया।

सोनाराम को घायल देख कुछ लोगों ने उन्हें अस्पताल पहुंचाया, जहां देर रात इलाज के दौरान उनकी मौत हो गई। हालांकि युवक ने यह कदम क्यों उठाया, इसका कारण अब तक सामने नहीं आ पाया है।

घर पहुंचकर शंकर ने बाकी परिजन के खाने में नींद की गोलियां मिला दीं। इससे सभी बेहोश हो गए तो सबसे पहले अपनी मां चंपा (55) को घर में बने पानी के टांके (टंकी) में फेंक दिया। उसका बेटा लक्ष्मण (14) भी वहीं सो रहा था, उसे भी टंकी में फेंक दिया। शंकर का छोटा बेटा दिनेश (8) अपनी मां के पास सो रहा था, सुबह करीब 5 बजे उसे भी टंकी में फेंक दिया।

शुक्रवार सुबह लोगों ने टंकी में शव तैरते देखे और पुलिस को सूचना दी। जोधपुर ग्रामीण एसपी अनिल कयाल ने बताया कि शुरुआती जांच में पत्नी से विवाद की बात सामने आई है, लेकिन अभी पुख्ता कुछ नहीं है।

दो दिन से दे रहा था परिवार को नींद की गोलियां

शंकर की भाभी ने बताया कि बुधवार रात को आरोपी ने परिवार के सभी लोगों को 22 नींद की गोलियां दी थी। शंकर ने परिवार को बोला कि सभी खेत में दिनभर काम करते हैं, इसलिए थक जाते हैं। ये गोलियां खाने से नींद अच्छी आएगी। गुरुवार को भी सभी को शिकंजी में तीन-तीन नींद की गोलियां डालकर दीं।

कमरा बंद था इसलिए भाभी बच गई

पुलिस ने बताया कि शंकर ने अपने भाई की पत्नी को भी नींद की गोलियां दी थी। ये भी कहा कि इसे आराम मिलेगा।

वह गोली लेकर अपने बच्चों के साथ कमरे में चली गई और दरवाजा बंद कर दिया। सामने आया कि वह भाई की पत्नी को भी मारना चाहता था लेकिन दरवाजा बंद होने की वजह से भाभी और बच्चे बच गए।

महंगाई का डबल अटैक, सीएनजी-पीएनजी की कीमतों में इजाफा

नई दिल्ली। महंगाई की मार झेल रहे लोगों को फिर जोरदार झटका लगा है। सरकारी कंपनी महानगर गैस लिमिटेड ने शुक्रवार को एक बार फिर सीएनजी एवं पाइप के जरिये आपूर्ति वाली रसोई गैस पीएनजी की कीमतों में वृद्धि कर दी।

अब सीएनजी मुंबई में 3.50 रुपये प्रति किलो महंगी होकर 89.50 रुपये प्रति किलो हो गई है। वहीं, घरेलू पीएनजी 1.50 रुपये महंगी होकर 54 रुपये प्रति घन मीटर हो गई है। नई दरें आज यानी शुक्रवार की आधी रात से प्रभावी हो जाएंगी।

अक्टूबर से एमजीएल की कीमतें बढ़ाने का यह दूसरा मौका है। केंद्र ने अक्टूबर की शुरुआत में घरेलू स्तर पर उत्पादित गैस की कीमत वित्त वर्ष की दूसरी छमाही के लिए 40 प्रतिशत तक बढ़ा दी थी। इसके पहले अप्रैल में भी पहली छमाही के लिए गैस के दाम 110 प्रतिशत बढ़ाए गए थे।

एक अप्रैल को वाहनों में ईंधन के तौर पर इस्तेमाल होने वाली सीएनजी के दाम 60 रुपये प्रति किलो था जबकि घरेलू रसोई गैस पीएनजी 36 रुपये प्रति घन मीटर के भाव पर थी। गैस की कीमतों में आई तेजी के बीच डॉलर के मुकाबले रुपये की कीमत गिरने के असर को कम करने के लिए एमजीएल ने सीएनजी और पीएनजी के दाम बढ़ा दिए हैं।

नियंत्रित कीमत वाली गैस की कम आपूर्ति को देखते हुए एमजीएल ने कहा कि आपूर्ति 10 प्रतिशत तक घट गई है जिससे उसे मांग बनी रहने से अपेक्षाकृत ऊंची कीमतों पर गैस खरीदनी पड़ रही है।

एमजीएल ने दावा किया कीमत बढ़ने के बावजूद महानगरों में सीएनजी अब भी पेट्रोल से करीब 42 प्रतिशत सस्ती है जबकि पीएनजी के दाम एलपीजी से करीब आठ प्रतिशत कम हैं।

दिल्ली में एमसीडी चुनाव का ऐलान

4 दिसंबर को होगा मतदान, 7 दिसंबर को आएगा रिजल्ट

नई दिल्ली। दिल्ली चुनाव आयुक्त विजय देव ने शुक्रवार को दिल्ली नगर निगम चुनाव का ऐलान कर दिया है। 7 से 14 नवंबर तक नामांकन होंगे। 4 दिसंबर को वोटिंग होगी, जबकि 7 दिसंबर को काउंटिंग होगी। दिल्ली नगर निगम में 250 सीटें हैं, इनमें अनुसूचित जाति (स्ट) के लिए 42 सीटें रिजर्व हैं। महिलाओं के लिए 50 फीसदी सीटें रिजर्व होंगी। दिल्ली नगर निगम के वार्डों के परिसीमन के बाद केंद्र सरकार ने 18 अक्टूबर को नोटिफिकेशन जारी किया था।

चुनाव के लिए 50 हजार से ज्यादा ईवीएम होंगी

दिल्ली के सभी 250 वार्ड में ईवीएम से वोट डाले जाएंगे। इसके लिए 50 हजार से ज्यादा ईवीएम रखी गई हैं। वोटर की सुविधा के लिए चुनाव में एक लाख से ज्यादा कर्मचारियों की तैनाती होगी। चुनाव में 250 एआरओ, 2 हजार सेक्टर मजिस्ट्रेट होंगे। 68 जनरल ऑब्जर्वर तैनात होंगे।

दिल्ली में आचार संहिता लागू

दिल्ली में कल से ही आचार संहिता लागू हो गई है। अब मॉडल बुक ऑफ कंडक्ट की एक बुकलेट जारी की जाएगी। लाउडस्पीकर के उपयोग पर पर रोक रहेगी। लाउडस्पीकर का यूज करने के लिए परमिशन लेनी होगी। परमीशन लेने के बाद भी रात 10 बजे से सुबह 6 बजे तक लाउडस्पीकर नहीं बजा सकेंगे। दिल्ली में अवैध रूप से लगे होर्डिंग्स और पोस्टर्स के खिलाफ अभियान चलाया जाएगा।

उम्मीदवारों के नामांकन 68 स्थानों पर सुबह 10 बजे से दोपहर 3 बजे तक होंगे। एक कैंडिडेट चुनाव प्रचार में 8 लाख रुपए तक खर्च कर सकता है। पिछले चुनाव में खर्च सीमा 5.75 लाख रुपए थी।

राष्ट्रीय सुरक्षा को बर्बाद कर रही है मोदी सरकार : राहुल-खडगे

नयी दिल्ली। कांग्रेस अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खडगे तथा पार्टी के पूर्व अध्यक्ष राहुल गांधी ने मोदी सरकार पर राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ खिलवाड़ करने का आरोप लगाते हुए कहा है कि वह न सैनिकों का सम्मान कर पा रही है और न सेना में भर्ती के इच्छुक युवाओं को सम्मान दे रही है। कांग्रेस नेताओं ने जवानों के लिए मोदी सरकार की नीति को विफल बताया और कहा कि वह सीमा पर घुसपैठ को लेकर के सच नहीं बोल रही है और शहीदों की कुर्बानी को भुला रही है। सेना में भर्ती के इच्छुक युवा सरकार की नीतियों के कारण आत्महत्या करने को मजबूर हो रहे हैं। गांधी ने कहा, न कोई घुस आया है' के झूठ से प्रधानमंत्री ने कर्नल संतोष बाबू जैसे वीरों की कुर्बानी को व्यर्थ घोषित कर दिया लेकिन भारत अपने शहीदों को नहीं भूला है और न भूला है भाजपा का विश्वासघात। खड़गे ने कहा, सशस्त्र बलों एवं सीएपीएफ में 2 लाख से अधिक पद खाली है। अग्निपथ योजना के तहत 35 लाख युवाओं ने 40 हज़ार पदों के लिए आवेदन किया। भारत के एक जवान बेटे को भर्ती न होने पर आत्महत्या करते देख व्यथित हूं। भाजपा सरकार की नीतियां युवाओं के भविष्य और हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा को बर्बाद कर रही हैं।

अनंतनाग में प्रवासी मजदूरों पर हमला

स्कूल में काम कर रहे मजदूरों पर आतंकियों ने गोलियां चलाईं, हालत गंभीर

श्रीनगर। जम्मू-कश्मीर में आतंकियों ने एक बार फिर प्रवासी मजदूरों को निशाना बनाया है।

अनंतनाग जिले के बोंदियालगाम में आतंकियों ने दो प्रवासी मजदूरों पर गोलियां चलाईं। इससे दोनों गंभीर रूप से घायल हो गए। दोनों को स्थानीय लोगों की मदद से पुलिस ने अस्पताल में भर्ती कराया।

बिहार और नेपाल के रहने वाले हैं मजदूर

कश्मीर जोन पुलिस ने बताया दोनों मजदूर एक प्राइवेट स्कूल में काम कर रहे थे।

इसी दौरान आतंकियों ने उन पर हमला कर दिया। मजदूर बिहार और नेपाल के रहने वाले हैं। वे बोंडियालगाम के एसएपीएस स्कूल में काम करते हैं। दोनों की हालत नाजुक बनी हुई है।

पुंछ सेक्टर में 3 आतंकी ढेर

इस हमले से पहले गुरुवार को ही सेना के जवानों ने पुंछ सेक्टर में आतंकियों ने घुसपैठ की कोशिश की थी। इस पर सेना ने कार्रवाई की तो आतंकियों ने गोलीबारी शुरू कर दी।

इसके जवाब में सुरक्षाकर्मियों ने भी गोलीबारी शुरू कर दी। इस दौरान जवानों ने तीन आतंकियों को मार गिराया। इस ऑपरेशन के बाद सर्चिंग के दौरान सेना को पिस्तौल, राइफल के साथ कई हथियार बरामद हुए।

कश्मीरी पंडितों को मारने वाला आतंकी ढेर

पुलवामा के अवंतीपोरा में मंगलवार को सुरक्षाबलों ने 3 आतंकियों को मार गिराया है। इनमें लश्कर का कमांडर मुख्तार भट भी शामिल है, जो घाटी में कश्मीरी पंडितों और प्रवासियों पर अटैक कर रहा था।

उसके साथ पुलवामा का सकलैन मुश्ताक और पाकिस्तानी आतंकी मुश्फिक भी मारा गया है। सुरक्षाबलों ने आतंकियों के पास से भारी मात्रा में हथियार भी बरामद किए हैं।

हत्या

अमृतसर में मंदिर के बाहर प्रदर्शन के दौरान पांच गोलियां मारी

पंजाब में पुलिस प्रोटेक्शन में हिंदू नेता की गोली मारकर हत्या

अमृतसर। पंजाब के अमृतसर में शुक्रवार को हिंदू नेता सुधीर सूरी की गोली मारकर हत्या कर दी गई। सूरी को पुलिस प्रोटेक्शन मिला हुआ था, इसके बावजूद उन्हें अमृतसर में गोपाल मंदिर के बाहर 5 गोलियां मारी गईं। वे मंदिर के बाहर मूर्तियों की बेअदबी के खिलाफ प्रदर्शन कर रहे थे। गोली मारने वाले को गिरफ्तार कर लिया गया है। उससे हत्या में इस्तेमाल की गई पिस्टल भी बरामद कर ली गई है।

जिस समय सूरी को गोली मारी गई, तब उनके साथ कई समर्थक भी मौजूद थे। फायरिंग के बाद उन्हें घायल हालत में प्राइवेट अस्पताल ले जाया गया, जहां उन्होंने दम तोड़ दिया। सूरी खालिस्तान समर्थकों के टारगेट पर थे। कुछ समय पहले विदेश में बैठे खालिस्तान समर्थकों ने उनकी हत्या की साजिश भी रची थी। इसके बाद ही उन्हें पुलिस प्रोटेक्शन दिया गया था। हमलावर जिस कार से आया था, उसमें खालिस्तानियों का स्टीकर लगा था।

डीजीपी बोले- 32 बोर के लाइसेंसी पिस्टल से फायरिंग

पंजाब के डीजीपी गौरव यादव ने कहा- हत्या का केस दर्ज कर लिया है। आरोपी संदीप सिंह सन्नी को अरेस्ट कर लिया है। यह आतंकी घटना थी या कुछ और, इसके बारे में अभी कुछ भी कहना ठीक नहीं है। कत्ल के पीछे कोई संगठन है या इसकी साजिश रची गई, इसकी जांच कर रहे हैं। संदीप सन्नी ने 32 बोर के लाइसेंसी पिस्टल के साथ 5 गोलियां चलाई। सूरी को कितनी लगीं, ये पोस्टमार्टम के बाद पता चलेगा।

छाती पर लगी गोली, अस्पताल में मौत

सूरी गोपाल मंदिर के बाहर धरने पर बैठे हुए थे। उसी दौरान दोपहर को कार से आए संदीप सिंह ने आकर उन पर फायरिंग कर दी। दो गोलियां सुधीर सूरी की छाती पर लगीं। उन्हें तुरंत एक प्राइवेट अस्पताल ले जाया गया, जहां उनकी मौत हो गई।

हमले के बाद कन्फ्यूजन फैल गया कि सूरी को गोली सीधे मारी गई या नजदीकी इमारत की छत से उन पर फायरिंग हुई।

हमले के बाद उनके सुरक्षाकर्मियों ने जवाबी कार्रवाई करते हुए हवाई फायर भी किए, लेकिन आरोपी मौके से भागने में कामयाब रहे। यह पता नहीं चल पाया है कि गोलियां चलाने वाले किस ओर भागे थे।

मंदिर के बाहर फेंकी गई थी खंडित मूर्तियां

अमृतसर के गोपाल मंदिर के बाहर लोगों ने खंडित मूर्तियां रख दी थीं। ये मूर्तियां पैरों में आ रही थीं और उनके पास गंदगी भी पड़ी थी। इसे देखकर हिंदू नेता सुधीर सूरी और उनके समर्थक मंदिर के बाहर प्रदर्शन कर रहे थे। यह प्रदर्शन गोपाल मंदिर मैनेजमेंट के खिलाफ था।

शार्ट न्यूज

सैमको म्यूचुअल फंड का एनएफओ पन्द्रह नवंबर को खुलेगा जो 16 दिसंबर को होगा बंद

जयपुर। सैमको म्यूचुअल फंड ने विशिष्ट ईएलएसएस टैक्स सेवर फंड पेश किया जो मुख्य रूप से मध्यम आकार एवं छोटी कंपनियों में निवेश करेगा और इसका एनएफओ 15 नवंबर को खुलेगा जो 16 दिसंबर को बंद होगा। सैमको म्यूचुअल फंड के हेड ऑफ इक्विटी रिसर्च पारस मटालिया ने आज प्रेस कांफ्रेंस में बताया कि सैमको ईएलएसएस टैक्स सेवर फंड कुशल मिड-कैप और स्मॉल- कैप बिजनेस का एक पोर्टफोलिया होगा। इस ईएलएसएस में अनिवार्य तौर पर तीन साल का लॉक-इन पीरियड होगा जो धन सृजन का एक शानदार माध्यम साबित हो सकता है। मटालिया बताया कि सैमको ईएलएसएस टैक्स सेवर फंड' मुख्य रूप से मध्यम आकार एवं छोटी कंपनियों में निवेश करेगा जिनमें वृद्धि की बहुत अधिक संभावनाएं मौजूद हैं और जो लंबी अवधि में काफी बढ़िया जोखिम समायोजित रिटर्न दे सकते हैं। उन्होंने बताया कि फंड मुख्य रूप से मझोले एवं छोटे आकार के उच्च गुणवत्ता वाले, ग्रोथ-ओरिएंटेड बिजनेस में निवेश करेगा जिसका मार्केट शेयर काफी अधिक है, जिनकी प्राइसिंग पावर काफी अधिक है जिनका कॉरपोरेट गवर्नेंस उच्च मानकों के अनुरूप है और बैलेंसशीट काफी मजबूत है। एनएफओ 15 नवंबर 2022 को खुलेगा और 16 दिसंबर 2022 को बंद होगा। उन्होंने कहा कि तीन साल के औसत रोलिंग रिटर्न के आधार पर ये बात सामने आती है कि निफ्टी मिडस्मॉलकैप 400 इंडेक्स ने एक अप्रैल, 2005 के बाद से निफ्टी 500 इंडेक्स की तुलना में आठ फीसदी ज्यादा रिटर्न दिया है।

300 रुई की गांठें लेकर दो ट्रक गायब

श्रीगंगानगर। राजस्थान में श्रीगंगानगर और हनुमानगढ़ जिलों की दो कोटन फैक्ट्रियों द्वारा एक ही दिन भीलवाड़ा की एक फर्म को भेजी गई 90 लाख रुपए मूल्य की हुई कि 300 गांठें लेकर दो ट्रक रास्ते में ही कहीं गायब हो गए। दोनों ट्रक श्रीगंगानगर की एक ही ट्रांसपोर्ट कंपनी से मंगवाए गए थे। दोनों ट्रकों में लगभग 45-45 लाख रुपए मूल्य की 150-150 रुई की गांठे थीं। दोनों ट्रक ही भीलवाड़ा नहीं पहुंचे। काफी तलाश करने पर भी ट्रक, माल और इनके चालकों का पता नहीं चला दोनों फैक्ट्रियों के संचालकों द्वारा संबंधित थानों में मुकदमे दर्ज करवाए गए हैं। प्रेसिंग फैक्ट्री सिंगला इंडस्ट्रीज के संचालक का सुमित अग्रवाल द्वारा दी गई रिपोर्ट के आधार पर ट्रक चालक इमरान खान पर धोखा देते हुए अमानत में खयानत करने के आरोप में मुकदमा दर्ज किया गया है।

नील गायों से टकराने से बाइकों पर सवार दो युवकों की मौत

श्रीगंगानगर। राजस्थान के श्रीगंगानगर जिले में जैतसर थाना क्षेत्र में गुडली फांटा के पास नील गायों से दो मोटरसाइकिलों के टकराने से दो युवकों की मौत हो गई। यह दोनों हादसे कुछ ही समय के अंतराल पर घटित हुए। मोटरसाइकिल पर सवार दोनों युवकों की मौके पर ही मौत हो गई। दोनों हादसों की जांच कर रहे एएसआई नंदराम ने बताया कि दो नवंबर की शाम को गुडली फांटा के पास मोटरसाइकिल पर जा रहा विनोद (18) निवासी बख्तावरपुरा एक नील गाय से टकरा गया। दो-तीन नीलगाय एक साथ सड़क पर आ गई थीं। बचने के प्रयास में विनोद नियंत्रण खो बैठा और टक्कर हो गई। उसकी मौके पर ही मृत्यु हो गई। इस हादसे से कुछ देर पहले गुडली फांटा के पास इसी प्रकार अचानक रोड पर आए नीलगाय से एक मोटरसाइकिल टकरा गया। इस पर सवार हेतराम (35) निवासी चक 4-बीकेएम की भी घटनास्थल पर ही मृत्यु हो गई। पुलिस ने बताया कि दोनों मृतकों के शव पोस्टमार्टम करवाने के बाद परिवार वालों को सौंप दिए गए।

अजमेर पुलिस ने लाखों रुपए कीमत के 56 मोबाइल बरामद किए

अजमेर। राजस्थान में अजमेर जिले की दरगाह थाना पुलिस ने महाराष्ट्र के चोर गिरोह का खुलासा करते हुये सात मोबाइल चोरों को गिरफ्तार कर लाखों रुपए के 56 मोबाइल बरामद किए गए है। जिला पुलिस अधीक्षक चुनाराम जाट ने बताया कि आरोपी भीड़भाड़ का फायदा उठाकर यहां पर वारदातें किया करते हैं। दरगाह थाना पुलिस इस साल अब तक चोरों से 410 मोबाइल बरामद कर चुकी है। उन्होंने बताया कि एक नवंबर को थाना दरगाह पर मोबाइल चोरी के संबंध में मुकदमा दर्ज हुआ था। इस संबंध मेकं गठित पुलिस टीम ने शहर के अभय कमांड सेंटर के कैमरो एवं बाजार व प्रतिष्ठानों पर लगे सीसीटीवी कैमरों की फुटेज से संदिग्धों को चिन्हित किया। मुखबिर एक्टिव कर उनके बारे में सूचनाएं एकत्रित की। प्राप्त आसूचना के आधार पर 7 चोरों को गिरफ्तार कर विभिन्न कंपनियों के 56 मोबाइल बरामद किये गये है। आरोपियों से पुलिस की टीम गहनता से अनुसंधान कर रही है। भीड़-भाड़ का फायदा उठाकर दरगाह थाना क्षेत्र में मोबाइल चोरी की वारदात करने वाले महाराष्ट्र के नासिक जिले के थाना आजाद नगर मालेगाव निवासी नवीद अख्तर अंसारी अहमद (30) एवं जियाउर रहमान (22) तथा थाना पंवारवाड़ी निवासी मोहम्मद अनवर (34), शेख रफीक (24), साजिद शेख (35), उमर फारूक (20) एवं शेख लईक (30) को गिरफ्तार किया गया है।

सीईटी की बस बुकिंग के दौरान हंगामा, पुलिस ने किया लाठीचार्ज

हिसार। हरियाणा में शनिवार और रविवार को होने जा रही कॉमन एलिजिबिलिटी टेस्ट (सीईटी) के लिए बसों की बुकिंग के लिए रोडवेज की बदइंतजामी के कारण भीड़ बेकाबू हो गई और पुलिस को लाठीचार्ज करना पड़ा। एसईटी में हिसार के एक लाख 21 हजार अभ्यर्थी प्रदेश के 10 जिलों में परीक्षा देने के लिए जाएंगे। इसके लिए प्रदेश सरकार ने निश्शुल्क बसें चलाने की घोषणा की है लेकिन उसके लिए पहले पंजीकरण करवाना जरूरी है जिससे सुबह से रोडवेज की वर्कशॉप में स्टूडेंट की भीड़ जुटना शुरू हो गई और लंबी लाइनें लग गई। लड़कों और लड़कियों की एक ही लाइन लगी, जिसको लेकर बवाल हो गया। बवाल बढ़ता देख पुलिस ने लाठीचार्ज किया। इस पर परीक्षार्थी और भड़क गए और वर्कशॉप की रेलिंग को तोड़ दिया। हालात ये बन गये कि रोडवेज को दोपहर बाद एक बजे ही बुकिंग ही बंद करनी पड़ी। रोडवेज अधिकारियों ने कहा कि सुबह सीधे ही विद्यार्थियों को बस में बैठाया जाएगा। जिला के गांव न्याणा गांव के परीक्षार्थी ने कहा कि उसने गुरुग्राम जाना है, लेकिन कोई बस नहीं है। ऐसे में वह कल कैसे पेपर देने के लिए पहुंच पाएगा। वह सुबह सात बजे आया था, लेकिन अब तक कोई समाधान नहीं निकल सका। अनुज ने बताया कि उसने भी गुरुग्राम जाना है, वह सात बजे से आया है, लेकिन गुरुग्राम और फरीदाबाद के लिए कोई बस उपलब्ध नहीं है। अब भी इंतजार कर रहा है कोई समाधान हो जाए।

एमबीबीएस की फीस बढ़ोत्तरी का फैसला वापिस ले सरकार

चंडीगढ़। हरियाणा में नेता प्रतिपक्ष भूपेंद्र सिंह हुड्डा ने प्रदेश की भाजपा-जजपा सरकार की तरफ से एमबीबीएस की फीस में बढ़ोतरी के फैसले को वापस लेने की मांग आज उठाई। हुड्डा ने यहां जारी बयान में आरोप लगाया कि सरकार गरीब और मध्यमवर्गीय परिवारों के बच्चों को चिकित्सा शिक्षा से वंचित करना चाहती है। इसलिए कभी उनके ऊपर 40 लाख के बॉन्ड की शर्त थोप दी जाती है तो कभी फीस को 50 हजार से बढ़ाकर सीधा 10 लाख कर दिया जाता है। उन्होंने कहा कि लगातार विद्यार्थी इसका विरोध कर रहे हैं और विपक्ष ने भी सड़क से लेकर विधानसभा तक में इस मुद्दे को उठाया है लेकिन प्रदेश सरकार मानने के लिए तैयार नहीं है। कांग्रेस नेता ने कॉमन इलिजिबिलिटी टेस्ट (सीईटी) के परीक्षा केंद्र दूर-दूर दिए जाने पर भी नाराज़गी जाहिर की। उन्होंने कहा कि विपक्ष ने जब विधानसभा में इस मुद्दे को उठाया था, तो सरकार ने खुद गृह जिले या साथ लगते जिले में परीक्षाएं करवाने की हामी भरी थी लेकिन एक बार फिर अपने वादे से मुकरते हुए सरकार ने बेरोजगार युवाओं को प्रताड़ित करने का काम किया है। फ्री बस सेवा के रजिस्ट्रेशन को लेकर भी हर जगह हजारों युवाओं की भीड़ उमड़ रही है। जिस समय विद्यार्थियों को परीक्षा की तैयारी करनी थी, वह समय उन्हें लंबी-लंबी कतारों में बर्बाद करना पड़ रहा है।

पंजाब : आतंकी कनेक्शन की जांच शुरू

पंजाबी सिंगर तलब; एनआईए ने की पूछताछ

नई दिल्ली। पंजाबी सिंगर सिद्धू मूसेवाला की हत्या का मामला अभी शांत नहीं हुआ है। इसी बीच नेशनल इन्वेस्टिगेशन एजेंसी यानी एनआईए ने आतंक तारों की जांच शुरू कर दी है। इसके लिए पंजाबी हस्तियों से भी जानकारी जुटाई जा रही है। खबर है कि जांच एजेंसी ने पंजाब के कई गायकों को इस सप्ताह पूछताछ के लिए बुलाया था।

एजेंसी के अनुसार, हस्तियों को गैंगस्टर्स से सांठगांठ और आतंकी तारों के चलते बुलाया है। रिपोर्ट में सूत्रों के हवाले से बताया गया है कि मनकीरत औलख, दिलप्रीत ढिल्लों, बी प्राक, अफसाना खान, जेनी जोहल को अलग-अलग समय पर पूछताछ के लिए बुलाया था। उन्होंने बताया कि अन्य गायकों को भी जांच में शामिल होने के लिए बुलाया जा सकता है।

हालांकि, इस मामले में अब तक एनआईए ने चुप्पी साध रखी है और मामले पर खुलकर कुछ नहीं कहा है। सूत्रों ने जानकारी दी है कि दिल्ली में पंजाब के कई कलाकार एनआईए दफ्तर पहुंच चुके हैं।

मूसेवाला के पिता ने उठाए थे सवाल

मूसेवाला के पिता बलकौर सिंह ने एनआईए की तरफ से कलाकारों से की जा रही पूछताछ पर सवाल उठाए थे। मीडिया रिपोर्ट्स के अनुसार, उन्होंने कहा था कि जांच एजेंसी महिला गायकों को भी पूछताछ के लिए बुलाकर परेशान कर रही है।

आपसी विवाद के चलते युवक ने स्कूल में घुसकर छात्र को गोली मारी

भरतपुर। राजस्थान में धौलपुर के कोतवाली थाना क्षेत्र में मोरोली गांव के सरकारी स्कूल में आज आपसी विवाद के चलते एक युवक ने स्कूल में घुसकर देशी कट्टे से 7वीं क्लास के छात्र को गोली मार दी। घटना में चेहरे और गर्दन पर छर्रे लगने से बुरी तरह जख्मी छात्र को गम्भीर हालत में उपचार के लिए जयपुर रेफर किया गया है। 16 वर्षिय पीड़ित छात्र रामहरि सिंह के पर्चा बयान के मुताबिक वह क्लास में बैठकर पढ़ाई कर रहा था। इसी दौरान गांव का युवक सचिन अवैध देशी कट्टा लेकर स्कूल में पहुंच गया। जहां आरोपी सचिन ने कट्टे से फायरिंग कर दी। फायरिंग के बाद गोली के छर्रे उसके चेहरे और गर्दन पर लगे। मामले को लेकर सीओ सिटी सुरेश सांखला ने बताया कि गोली मारने के आरोपी सचिन का भाई सत्येंद्र स्कूल में 9वीं क्लास में पढ़ता था। पीड़ित स्टूडेंट रामहरि और सत्येंद्र में दोस्ती थी। जानकारी यह भी सामने आई है कि गोली सत्येंद्र ने ही मारी है लेकिन पीड़ित ने पर्चा बयान में सचिन का नाम लिया है। स्कूल में मौजूद स्टाफ और छात्र का कहना है कि गोली बाथरूम के पास मारी गई जबकि पीड़ित ने पर्चा बयान में बताया कि वह क्लास में पढ़ रहा था।

ओडिशा में ट्रॉमा केयर सुविधायुक्त सात निजी अस्पतालों को मंजूरी

भुवनेश्वर। ओडिशा सरकार ने राज्य में लेवल वन टाइप के ट्रॉमा केयर सुविधाओं वाले सात निजी अस्पतालों को मंजूरी दी है।

आधिकारिक सूत्रों ने शुक्रवार को यहां बताया कि एक मानक संचालन प्रक्रिया तैयार की गई है और नयी सुविधाओं के साथ समझौता ज्ञापन पर जल्द ही हस्ताक्षर किए जाएंगे। इस योजना की निगरानी राज्य नोडल अधिकारी के रूप में अतिरिक्त डीएमईटी ओडिशा द्वारा की जाएगी।

स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग ने सड़क यातायात दुर्घटनाओं के कारण होने वाली मौतों के मामलों में कमी लाने औरसर्वोच्च न्यायालय की समिति के दिशा निर्देशों के अनुपालना में ओडिशा में ट्रॉमा केयर सुविधाओं को मजबूत किया गया है।

केंद्र सरकार के समर्थन से शुरुआत में 11वीं वित्त वर्ष योजना और 12वीं वित्त वर्ष योजना के दौरान कुछ ट्रॉमा केयर सुविधाएं (टीसीएफ) को मजबूत किया गया था। इसके बाद 33 टीसीएफ को अधिसूचित किया जाता है, जिनमें से 3 लेवल वन टाइप होते हैं, 4 लेवल टू टाइप और बाकी 26 लेवल थ्री के स्तर के है। इस सुविधा को मजबूत करने के लिए ट्रॉमा के पहले 48 घंटे कैशलेस उपचार करने के लिए राज्य में 2019 में नि: शुल्क उपचार योजना शुरू की गई है।

बोकारो में घर से अधिकारी का शव बरामद

बोकारो। झारखण्ड में बोकारो जिले के पंचायती राज पदाधिकारी राज शेखर का शव उनके आवास से आज बरामद किया गया। पुलिस सूत्रों ने यहां बताया कि अधिकारी की पत्नी सुबह मॉर्निंग वॉक से वापस लौटी तो देखा कि उनके पति फंदे से लटक रहे हैं। आनन-फानन में अधिकारी फंदे से उतारा गया लेकिन तब तक उनकी मौत हो चुकी थी। घटना की सूचना मिलते ही पुलिस घटनास्थल पर पहुंचकर छानबीन में जुट गई है। सूत्रों ने बताया कि बोकारो उपायुक्त कार्यालय में कार्यरत जिला पंचायती राज पदाधिकारी डीपीआर के पद पर कार्यरत थे।

पुंछ में सेना ने नाकाम की घुसपैठ

एक आतंकवादी ढेर, हथियार जब्त

जम्मू। जम्मू-कश्मीर के पुंछ जिले में सेना ने नियंत्रण रेखा (एलओसी) पर आतंकवादियों की घुसपैठ की कोशिश को नाकाम किया और एक आतंकवादी के शव को बरामद कर उसके पास से हथियार और गोला-बारूद बरामद किए हैं।

पुंछ ब्रिगेड के कमांडर ब्रिगेडियर राजेश बिष्ट और पुलिस उप महानिरीक्षक (राजौरी-पुंछ) डॉ. हसीब मुगल ने राजौरी में मीडिया को बताया कि गुरुवार को सैनिकों ने पुंछ सेक्टर के नकारकोट इलाके में पठानी सूट में तीन घुसपैठियों की संदिग्ध गतिविधि करते हुए देखा। उन्होंने कहा, जब घुसपैठियों को भारतीय सेना ने चुनौती दी गई, तो उन्होंने अंधाधुध गोलीबारी की। सेना की ओर से जवाबी कार्रवाई की गयी जिसमें तीनों आतंकवादी घायल हो गए।

उन्होंने कहा, गोलीबारी बंद होने के बाद सैनिकों ने तलाश अभियान शुरू किया। घन जंगल होने के कारण सेना के जवानों के लिए कठिनाई भरा काम था। जवानों को घायल आतंकवादियों में एक आतंकवादी का शव मिला और उसके पास से हथियार भी बरामद किए गए हैं। अधिकारियों ने कहा कि एलओसी के पास हथियार और युद्ध में इस्तेमाल किये जाने वाले कई अन्य सामान भी बरामद किए गए। इसके अलावा एलओसी की ओर जाते हुए रास्ते में खून के निशान भी दिखाई दिए।

सेना को तलाश अभियान के दौरान दो एके-74 राइफल्स के साथ चार मैगजीन और 43 गोलियां, सात राउंड और मैगजीन के साथ एक चीनी पिस्तौल, केबल एवं बैटरी के साथ एक क्लेमोर माइन, एक एसएमजी मैगजीन, एक बैग तथा प्रतिबंधित सामग्री के साथ एक छोटा पैकेट भी मिला है। इसके साथ ही सुरक्षा बलों ने पुंछ सेक्टर में घुसपैठ की एक बड़ी कोशिश को विफल कर दिया है।

ईडी ने जेल में बंद कश्मीरी अलगाववादी नेता शब्बीर अहमद शाह का घर कुर्क किया

श्रीनगर। प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) ने शुक्रवार को धनशोधन रोकथाम अधिनियम 2002 के तहत जेल में बंद कश्मीरी अलगाववादी नेता शब्बीर अहमद शाह के घर को कुर्क किया।

अधिकारियों ने कहा कि 21.80 लाख रुपये का यह घर श्रीनगर के बरजुल्ला थाना क्षेत्र के सनत नगर के बोतशाह कॉलोनी में स्थित है। ईडी ने जांच के बाद संपत्ति को कुर्क किया गया है जिसमें सामने आया कि कश्मीर घाटी में अशांति फैलाने वाली गतिविधियों में अलगावादी नेता शाह सक्रिय रूप से शामिल थे।

ईडी ने कहा, जांच में पता चला है कि कश्मीर घाटी में शब्बीर शाह अशांति फैलाने से जुड़ी गतिविधियों में सक्रिय रूप से शामिल थे। ईडी ने शाह को वर्ष 2017 में धन शोधन मामले में गिरफ्तार किया था जो इस वक्त तिहाड़ जेल में हैं।

यह पहली बार नहीं है जब किसी अलगाववादी नेता की संपत्ति जब्त की गई है। इससे पहले श्रीनगर के बाहरी इलाके सौरा में जेल में बंद दुखतर-ए-मिलत के प्रमुख सैयदा आसिया अंद्राबी का घर भी जब्त किया गया था। लश्कर-ए-तैयबा के प्रमुख हाफिज सईद सहित अन्य के खिलाफ गैरकानूनी गतिविधि रोकथाम अधिनियम (यूएपीए) की विभिन्न धाराओं के तहत मई 2017 में दर्ज प्राथमिकी की जांच कर रही राष्ट्रीय जांच एजेंसी (एनआईए) ने शाह को भी इसमें संलिप्त पाया। जांच के दौरान यह बात सामने आई कि कश्मीर में पथराव, जुलूस, विरोध, बंद, हड़ताल और अन्य विध्वंसक गतिविधियों के माध्यम से कश्मीर घाटी में अशांति फैलाने की गतिविधियों में अलगावादी नेता शाह सक्रिय रूप से शामिल था।

रतलाम में चार लुटेरे गिरफ्तार

रतलाम। मध्यप्रदेश के रतलाम जिले में लूट के मामले में पुलिस ने चार बदमाशों को गिरफ्तार कर लिया है। पुलिस सूत्रों ने बताया कि चार दिन पूर्व हाईवे पर एक किसान के साथ चाकू की नोंक पर हुई लूट के मामले में आसिफ और इसकी निशानदेही पर दिनेश, होकम सिंह और जाहिद को गिरफ्तार कर लिया है। इस मामले में अभी दो और आरोपी फरार है। इन आरोपियों ने लघुशंका करते समय फरियादी अनिल की जेब से छह हजार तीन सौ रुपये, मोबाइल और एटीएम कार्ड और मोटरसाइकिल लूट कर फरार हो गये थे। पुलिस ने बताया कि इन आरोपियों के पास से तीन मोटर सायकिलें, मोबाइल फोन, एक चाकू और नगद राशि चार हजार रुपये जब्त किया।

पूर्व डीजीपी सिद्धू की गिरफ्तारी पर हाईकोर्ट ने लगाई रोक

नैनीताल। उत्तराखंड उच्च न्यायालय ने सरकारी जमीन पर कब्जा करने व पेड़ काटने के आरोपी प्रदेश के पूर्व पुलिस महानिदेशक (डीजीपी) बीएस सिद्धू की गिरफ्तारी पर रोक लगा दी है।

सिद्धू के खिलाफ देहरादून के राजपुर थाने में सरकारी जमीन पर अतिक्रमण व पेड़ काटने के आरोप में भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 166, 167, 419, 420, 467, 468, 471, 120 बी के तहत अभियोग पंजीकृत है। इस मामले को सिद्दू ने हाईकोर्ट में चुनौती देते हुए कहा कि इसी आरोप में उनके खिलाफ साल 2013 में भी अभियोग पंजीकृत किया गया था जो विचाराधीन है और उसी मामले में पुन: मुकदमा दर्ज किया गया है। नियमानुसार एक आरोप के लिये दो मुकदमे दर्ज नहीं किये जा सकते हैं। उन्होंने उनके खिलाफ पिछले महीने 23 अक्टूबर को दर्ज अभियोग को निरस्त करने की मांग की। वरिष्ठ न्यायधीश न्यायमूर्ति संजय मिश्रा की एकलपीठ ने मामले की सुनवाई के बाद श्री सिद्धू की गिरफ्तारी पर रोक लगा दी है और उन्हें जांच में सहयोग करने के निर्देश दिए हैं। याचिकाकर्ता के अधिवक्ता अवतार सिंह रावत व प्रसन्ना कर्नाटक ने बताया कि अदालत ने सरकार को इस मामले में स्थिति स्पष्ट करने को कहा है।

दो युवतियों पर युवती का अश्लील वीडियो बनाकर ब्लैकमेल करने का आरोप

श्रीगंगानगर। राजस्थान के श्रीगंगानगर में दो युवतियों पर अश्लील वीडियो बनाकर एक युवती को ब्लैकमेल करने और उसके बच्चे का अपहरण करने की कोशिश का आरोप लगा है। पुरानी आबादी थाना पुलिस ने 32 वर्षीय पीड़िता द्वारा दी गई रिपोर्ट के आधार पर सुमनरानी और किरण कुमारी निवासी हनुमान चौक के खिलाफ ब्लैकमेलिंग के आरोप में मुकदमा दर्ज किया है। पुलिस के अनुसार पुरानी आबादी में गहलोत चौक क्षेत्र की निवासी पीड़िता ने दर्ज करवाएं मुकदमे में बताया है कि उसने कुछ अरसा पहले निजी जरूरत पढ़ने पर सुमन रानी और किरण कुमारी से 50 हजार रुपए उधार लिए थे। बदले में उससे एक हस्ताक्षरयुक्त चेक और स्टांप पेपर लिए गए। पीड़िता के अनुसार उसने यह सारी राशि बाद में वापस कर दी लेकिन हस्ताक्षरयुक्त चेक तथा स्टांप पेपर वापस नहीं किये गए। उसे कुछ दिन बाद घर आकर चेक और स्टांप पेपर ले जाने के लिए कहा गया।

प्रधान ने पटनायक से आंध्र प्रदेश सीमा विवाद सुलझाने का आग्रह किया

भुवनेश्वर। केंद्रीय शिक्षा मंत्री धर्मेंद्र प्रधान ने शुक्रवार को एक बार फिर ओडिशा के मुख्यमंत्री नवीन पटनायक से ओडिशा और आंध्र प्रदेश के सीमा विवादों को सुलझाने में व्यक्तिगत रूप से हस्तक्षेप करने का आग्रह किया।
प्रधान में मुख्यमंत्री को लिखे एक पत्र में उनसे सर्वदलीय बैठक बुलाने, अंतरराज्यीय समिति के प्रगति की समीक्षा करने और सीमावर्ती गांवों में विकास संबंधी गतिविधियों की जानकारी देने का आग्रह किया।
केन्द्रीय मंत्री ने कहा कि उन्होंने 2020 में ही दक्षिण ओडिशा के सीमावर्ती गांवों जैसे कोरापुट जिले के पोट्टांगी ब्लॉक के कोटिया गावों का समूह और गजपति जिले के रायगढ़ ब्लॉक की गंगाबाद ग्राम पंचायत के मनिकापटना में उभरते मुद्दों पर मुख्यमंत्री का ध्यान आकर्षित किया था, लेकिन अब तक इस पर कोई कार्रवाई नहीं हुई।
उन्होंने कहा कि पिछले कुछ दिनों में इन गांवों में आंध्र प्रदेश सरकार की प्रशासनिक दखनदाजी की जानकारी मिल रही है और उसकी नजर अब केवल कोटिया तक ही सीमित नहीं है, बल्कि धीरे-धीरे दक्षिण ओडिशा के अन्य गांवों में भी हो रही है। उन्होंने कहा कि बदले हुए नाम के साथ ऐसे 21 गांवों को आंध्र प्रदेश के पार्वतीपुरम मान्यम जिले में शामिल किया गया है। प्रधान ने कहा कि आंध्र प्रदेश सरकार इन गांवों में विभिन्न योजनाओं और विकास कार्यक्रमों को सक्रियता से लागू कर रही है और स्थानीय लोगों को आंध्र प्रदेश में शामिल होने का प्रलोभन दे रही है। उन्होंने कहा कि ओडिशा सरकार और प्रशासन को जमीनी स्तर पर सक्रिय होने और इन सीमावर्ती गांवों के लोगों से नजदीकी बढ़ाने की जरूरत है।
केंद्रीय मंत्री ने कहा कि जिला मुख्यालय से बहुत दूर होने के कारण वहां के ग्रामीण आंध्र प्रदेश को अपने ज्यादा नजदीक पाते हैं और पड़ोसी राज्य इन्हें ओडिशा से अलग करने का फायदा उठा सकता है। उन्होंने कहा कि आंध्र प्रदेश राशन कार्ड, स्वास्थ्य, शिक्षा और अन्य सुविधाएं प्रदान कर एक रणनीतिक के तहत इन सीमावर्ती ग्रामीणों को प्रभावित करने की प्रयास में जुटा हुआ है।

नॉर्थ ईस्ट में मीडिया शिक्षण को बढ़ावा देगा आईआईएमसी का आइजोल कैंपस: मुर्मू

राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू ने किया आईआईएमसी के स्थाई आइजोल कैंपस का उद्घाटन

संवाददाता/गौरवशाली भारत

आइजोल। राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू ने मिजोरम की अपनी यात्रा के दौरान भारतीय जन संचार संस्थान के स्थाई आइजोल कैंपस का उद्घाटन किया। इस परिसर में संस्थान द्वारा अंग्रेजी पत्रकारिता एवं डिजिटल मीडिया में पीजी डिप्लोमा पाठ्यक्रमों का संचालन किया जाएगा।

इस अवसर पर राष्ट्रपति ने कहा कि भारतीय जन संचार संस्थान, आइजोल के स्थाई परिसर का उद्घाटन करते हुए मुझे बेहद खुशी हो रही है। यह परिसर पूरे उत्तर पूर्व में मीडिया और जनसंचार क्षेत्र में शिक्षण एवं प्रशिक्षण को बढ़ावा देगा। उन्होंने कहा कि आईआईएमसी लगातार सीखने और काम करने के जुनून का माहौल प्रदान करता है और मीडिया एवं जनसंचार के क्षेत्र में नए प्रयोगों को बढ़ावा देता है।

आईआईएमसी के उत्तर पूर्वी परिसर ने 2011 में मिजोरम यूनिवर्सिटी की ओर से उपलब्ध कराए गए एक अस्थाई भवन में काम शुरू किया था।

नवनिर्मित परिसर के लिए निर्माण कार्य 2015 में शुरू हुआ और यह 2019 में पूरा हुआ। इसकी कुल लागत 25 करोड़ रुपये है। 8 एकड़ भूमि पर बने इस कैंपस में छात्रावास व स्टाफ क्वार्टर के साथ अलग-अलग प्रशासनिक और शैक्षणिक भवन हैं।

अपनी स्थापना के समय से यह परिसर अंग्रेजी पत्रकारिता में पीजी डिप्लोमा पाठ्यक्रम की सुविधा प्रदान कर रहा है। इसके लिए अधिकांश छात्र भारत के अन्य हिस्से और कुछ उत्तर-पूर्वी राज्यों से आते हैं। 2022-23 सत्र से आईआईएमसी अपने दो अन्य परिसरों के साथ उत्तर पूर्वी परिसर में डिजिटल मीडिया में पीजी डिप्लोमा पाठ्यक्रम को शुरू करने जा रहा है।

इस पाठ्यक्रम को डिजिटल मीडिया के महत्व और सार्थकता को ध्यान में रखते हुए शुरू किया गया है।

सूचना और प्रसारण मंत्रालय के तहत भारतीय जन संचार संस्थान (आईआईएमसी) एक प्रमुख पत्रकारिता संस्थान है। 1965 में इसकी स्थापना भारत और अन्य विकासशील देशों में मीडिया पेशेवरों की प्रशिक्षण जरूरतों को पूरा करने के लिए की गई थी। उस समय से यह भारतीय सूचना सेवा के लिए एक प्रशिक्षण संस्थान के रूप में कार्य करता रहा है। इसके बाद पत्रकारों के लिए भी पाठ्यक्रम शुरू किया गया।

आईआईएमसी ने देश में मीडिया शिक्षा की जरूरत को पूरा करने के उद्देश्य से देश के विभिन्न हिस्सों में 5 क्षेत्रीय परिसरों का विस्तार किया है और उन्हें संस्थागत रूप प्रदान किया है।

नई दिल्ली में मुख्य परिसर के साथ, आईआईएमसी के ओडिशा में ढेंकनाल, मिजोरम में आइजोल, जम्मू-कश्मीर में जम्मू, केरल में कोट्टायम और महाराष्ट्र में अमरावती जैसे पांच क्षेत्रीय परिसर हैं।

पराली जलाने से प्रदूषण को लेकर हरियाणा का केजरीवाल पर पलटवार

एजेंसी

चंडीगढ़। हरियाणा के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्री जय प्रकाश दलाल ने राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में प्रदूषण के बढ़ते स्तर को लेकर दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल के बयान पर पलटवार करते हुए कहा कि उनकी प्रवृत्ति हमेशा से हरियाणा पर आरोप मढ़ने की रही है जबकि सच्चाई यह है कि राज्य में पराली जलाने को कम करने के साथ ही इसे शून्य तक लाने का लक्ष्य रखा गया है।

दलाल ने आज यहां अपने सरकारी निवास पर संवाददाता सम्मेलन में कहा कि केजरीवाल दिल्ली में होने वाली हर समस्या के लिए केंद्र सरकार और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को जिम्मेदार ठहरा देते हैं जो दुर्भाग्यपूर्ण है। आम आदमी पार्टी ने दिल्ली को रहने लायक ही नहीं छोड़ा है। कार्यालय बंद करना, स्कूल-कॉलेज बंद करना, ऑड-इवन फॉर्मूला लागू करने से लोगों को परेशानी में डालना जैसे समाधान लागू करने वाला नेता क्या दिल्ली को चाहिए। पहले वह पंजाब और हरियाणा के किसानों पर पराली जलाने से प्रदूषण का आरोप लगाते थे लेकिन अब पंजाब उनकी पार्टी की सरकार है तो अब केवल हरियाणा कि किसानों पर ही आरोप लगा रहे हैं जो पूर्णतया गलत है। दलाल ने कहा कि केजरीवाल कहते थे कि जब पंजाब में उनकी पार्टी की सरकार आएगी तो छह माह में ऐसी रणनीति अपनाएंगे, जिससे पराली जलाने की घटनाएं नहीं होंगी, लेकिन अब छह माह बाद वह एक साल का और समय मांग रहे हैं। इससे उनकी नीति और नीयत दोनों का पता चलता है।

उन्होंने पंजाब के मुख्यमंत्री भगवंत मान पर भी निशाना साधते हुए कहा कि उन्होंने हरियाणा में पराली जलाने की घटनाओं के बारे में जो बयान दिया है, उससे हरियाणा के किसान आक्रोशित हैं, लेकिन आज उन्होंने कम से कम यह जिम्मेदारी ली है और यह माना है कि पराली जलाने पर अंकुश नहीं लगाया जा सका है और इस पर अगले साल तक प्रबंधन कर लेंगे।

कृषि मंत्री ने दावा किया कि पंजाब में पराली जलाने की घटनाएं 20 प्रतिशत तक बढ़ी है जिससे हरियाणा में भी प्रदूषण बढ़ा है।

उन्होंने कहा कि आप नेता केंद्र सरकार और प्रधानमंत्री के खिलाफ बयानबाजी करने के बजाय अपने प्रदेश की समस्याओं का स्वयं समाधान करें। उन्होंने कहा कि पंजाब से अलग होकर बना हरियाणा आज कहीं बेहतर स्थिति में है।

शार्ट न्यूज

कृष्णा नगर विधान सभा में हुआ सबकी दिल्ली सबके सुझाव कार्यक्रम का आयोजन

नई दिल्ली। भारतीय जनता पार्टी दिल्ली प्रदेश शाहदरा जिला कृष्णा नगर विधान सभा में सबकी दिल्ली सबके सुझाव कार्यक्रम का आयोजन शीशे वाला मंदिर गीता कॉलोनी में किया गया। इस कार्यक्रम में. क्षेत्र की आर डब्ल्यू ए, वकील, डॉक्टर एवं टीचर मंदिर के प्रधान पुजारी और समाज में अपना प्रभुत्व रखने वाले मुख्य लोग कार्यक्रम में शामिल हुए। यह कार्यक्रम पूर्व विधायक प्रत्याशी डॉ अनिल गोयल जी के नेतृत्व में किया गया। डॉ अनिल गोयल जी ने समाज में प्रभुत्व रखने वाले सभी लोगो का सम्मान किया और उनसे नगर निगम में वे लोग किया बदलाव देखना चाहते है इस पर सभी से सुझाव लिए। लोगो ने खुलकर अपनी बात रखी। डॉ अनिल गोयल जी ने सभी का धन्यवाद् किया और आने वाले नगर निगम चुनाव के लिए दिल्ली में सुशाशन और विकास के लिए लोगो से भाजपा को नगर निगम में फिर से अपना सहयोग देने के लिए कहा। इस अवसर पर विधान सभा विस्तारक श्री सुभाष कैशिक जी, पूर्व पार्षद श्री दीपक मल्होत्रा जी, पूर्व पार्षद श्रीमती नीमा भगत जी, मंडल अध्यक्ष इन्दु बाला जी मंडल अध्यक्ष श्री कुश बिंद्रा जी, मंडल अध्यक्ष श्री दिनेश वर्मा जी, मंडल अध्यक्ष श्री संजय शर्मा जी उपस्थित रहे।

दिल्ली में बढ़ते प्रदूषण को लेकर सी एन जी बसों को तत्काल चलाने की मांग

नई दिल्ली। दिल्ली में बढ़ते प्रदूषण को लेकर दिल्ली के बस मालिको ने दिल्ली सरकार से आग्रह किया है कि अगर सरकार दिल्ली में निजी सी एन जी बसों को तत्काल चलाने के लिए कहे तो करीब एक महीने नई 1 हज़ार बसे बस मालिक देने को तैयार है। मगर इसके लिए सरकार को कम से कम 4 साल तक के लिए अनुबंध करना होगा। एस टी ए ऑपरेटर्स एकता मंच के महासचिव श्याम लाल गोला ने बताया कि दिल्ली में हर साल में करीब 8 महीने प्रदूषण की समस्या को लेकर झूझना पड़ता है, मगर निजी बसों को सिर्फ 2 या 3 माह के लिए ही अनुबंध स्वरूप लिया जाता है। जिससे कि पुरानी बसे जो कि क्स-4 की होने के कारण सही ढंग से सेवाय नहीं दे पाती एक ओर जहां दिल्ली में बसों की कमी भी है उसको देखते हुए बहुत से लोगों को रोजगार भी मिलेगा। करीब 800 सी एन जी मिनी रूट परमिट वाली बसे पर्याप्त कमाई न होने के कारण आज बस मालिको के घर पर बेकार भी खड़ी हुई है। गोला ने इस विषय पर मुख्यमंत्री, परिवहन मंत्री, एवं परिवहन आयुक्त से आग्रह करते हुए सुझाव दिया है। अगर सरकार हमारे सुझाव पर गौर करें तो भविष्य में भी हमारी बसों को दिल्ली में विभिन्न जगहों पर चलाया जा सकता है। हम सरकार से निवेदन करते है कि कोरोना के समय से खाली बैठे निजी बस मालिको को इससे रोजगार भी मिलेगा साथ ही साथ सरकार को हमारी अनुबंधित बसों से राजस्व में तो भारी फायदा होगा ही दिल्ली की जनता को भी प्रदूषण से भी बहुत जल्द निजात मिलेगी।

मोदी जी ने फ्लैट की ही नहीं, किस्मत की भी चाबी दी : भाजपा

नई दिल्ली। भाजपा नेताओं ने प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी को पूरी दिल्ली की तरफ से धन्यवाद दिया है कि उन्होंने दिल्ली के हजारों झुग्गीवासियों को सम्मान के साथ जीने का हक देते हुए उन्हें फ्लैटों की चाबी दी है। यह सिर्फ फ्लैट की चाबी नहीं बल्कि उनकी किस्मत की चाबी है। प्रधानमंत्री का धन्यवाद करने के लिए भाजपा नेताओं का एक वरिष्ठ प्रतिनिधिमंडल केंद्रीय आवास एवं शहरी विकास मामलों के मंत्री श्री हरदीप पुरी से मिला। प्रतिनिधिमंडल में दिल्ली प्रदेश भाजपा के अध्यक्ष श्री आदेश गुप्ता, नेता प्रतिपक्ष रामवीर सिंह बिधूड़ी, महामंत्री श्री हर्ष मलहोत्रा और प्रवक्ता श्री सतीश गर्ग शामिल थे। नेताओं ने श्री हरदीप पुरी से कहा कि दिल्ली के झुग्गीवालों की किस्मत बदल गई है और केवल प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और भाजपा ही यह कार्य कर सकती है। भाजपा नेताओं ने दिल्ली में 10 हजार करोड़ रुपए के प्रोजेक्ट देने के लिए भी श्री पुरी का आभार व्यक्त किया। इसमें द्वारका में 25 हजार की क्षमता वाला कनवेंशन सेंटर, 12 डायवरसिटी पार्क, पांच फ्लाई ओवर और सड़कें जिनमें महिपालपुर का अंडरपास और बाईपास भी शामिल है, प्रगति मैदान के पास बनी शानदार टनल, यमुना के किनारों का सौंदर्यीकरण और दुनिया का सबसे बड़ा इको पार्क प्रमुख हैं। नेता प्रतिपक्ष रामवीर सिंह बिधूड़ी ने कहा कि दिल्ली को प्रदूषण से मुक्ति दिलाने के लिए केंद्र सरकार तन्मयता से काम कर रही है और सारी परियोजनाएं उसका उदाहरण हैं लेकिन दिल्ली सरकार की निष्क्रियता के कारण राजधानी के लोगों को जहरीली हवा में सांस लेना पड़ रहा है।

दिल्ली नगर निगम चुनावों की घोषणा का दिल्ली कांग्रेस स्वागत करती है : चौ0 अनिल कुमार

नई दिल्ली। दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष चौ0 अनिल कुमार के नेतृत्व में आज प्रदेश कांग्रेस कार्यालय में दिल्ली में भारत जोड़ो यात्रा के स्वागत और आगमन तथा दिल्ली नगर निगम चुनावों की तैयारियों को लेकर पूर्व प्रदेश कांग्रेस अध्यक्षों, पूर्व सांसदों, दिल्ली सरकार के पूर्व मंत्रियों, अ0भा0क0कमेटी के राज्य प्रभारी, प्रदेश कांग्रेस के उपाध्यक्ष, अ0भा0क0कमेटी के असंगठित कामगार एवं कर्मचारी कांग्रेस एवं एस.सी. विभाग के चेयरमैन और लोकसभा चुनाव -2019 पूर्व प्रत्याशियों की एक बैठक आयोजित की गई। बैठक में मौजूद सभी सदस्यों का प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष चौ0 अनिल कुमार ने स्वागत किया और बैठक में भारत जोड़ो यात्रा की तैयारियों और निगम चुनावों संबधिंत सुझाव दिए, जिन पर गंभीर चर्चा भी की गई। चौ0 अनिल कुमार ने कहा कि चुनाव आयोग द्वारा 4 दिसम्बर को दिल्ली नगर निगम के चुनावों की घोषणा का हम स्वागत करते हैं। उन्होंने कहा कि हार के डर से भाजपा निगम चुनाव टालकर परिसीमन किया था। हम परिसीमन की अनियमितताओं को लेकर हम कोर्ट गए थे, जहाँ 15 दिसंबर को सुनवाई की तारीख दी। उन्होंने कहा कि निगम चुनाव घोषित होने के बाद हम अदालत से भी बडी जनता का अदालत जाऐंगे। हम निगम चुनावों का स्वागत करते है। उन्होंने कहा कि कांग्रेस दलितों और अलपसंख्यकों बताऐगी कि केजरीवाल और भाजपा ने कैसे उनको धोखा दिया है।

दिल्ली में क्यों खिलवाड़ कर रही सरकार : नीरज सेठी प्रभारी (दिल्ली प्रदेश) शिवसेना बालासहेबची

नई दिल्ली। पंजाब में पराली जलाने पर सीएम अरविंद केजरीवाल के बयान के बाद राजनीति तेज हो गई है शिवसेना दिल्ली भी इस मुद्दे को लेकर केजरीवाल पर हमला बोला शिवसेना दिल्ली प्रभारी नीरज सेठी ने कहा कहा हवाई बातें करने वाले केजरीवाल आज दिल्ली को कहां लेकर जा रहें है। उन्होंने आगे कहा कि अरविंद केजरीवाल पिछले साल तक पंजाब को दिल्ली के प्रदूषण का दोषी बताते थे और अब पूरे उत्तर भारत को दोषी ठहरा रहें हैं मतलब साफ है दिल्ली में प्रदूषण पर अब सियासी धुआं फैलने लगा है जबकि हकीकत में जनता का दम घुट रहा है। लोगों को चैन की सांस भी नसीब नहीं है और नेता एक दूसरे पर शब्द बाण दागने में जुटे हैं। आगे बोलते हुए सेठी ने कहा दिल्ली सरकार ने सिर्फ प्राइमरी तक के स्कूल बंद किए हैं बल्कि उन्हें सभी बच्चों का ध्यान रखकर सारे स्कूल बंद करने चहिए थे जब कोविड में ऑनलाइन क्लासेज हो सकती हैं तो अब बच्चों की जान से खिलवाड़ क्यों किया जा रहा है।

दिल्ली में जरूरी सेवाओं के अलावा अन्य ट्रकों की एंट्री पर रोक, सीएनजी-इलेक्ट्रिक ट्रकों को छूट : गोपाल राय

दिल्ली सरकार ने इसके लिए 6 सदस्यीय मानिटरिंग कमेटी का किया गठन : गोपाल राय

प्रफुल्ल राय/गौरवशाली भारत

नई दिल्ली। दिल्ली के पर्यावरण मंत्री गोपाल राय ने कहा कि दिल्ली में जरूरी सेवाओं के अलावा अन्य ट्रकों की एंट्री पर रोक लगा दी गई है। सिर्फ सीएनजी और इलेक्ट्रिक ट्रकों को अनुमति मिलेगी। इसके लिए दिल्ली सरकार ने 6 सदस्यीय मानिटरिंग कमेटी का गठन किया है। अब दिल्ली सरकार के कार्यालय 50 प्रतिशत क्षमता से खुलेंगे। ? इसके अलावा 50 प्रतिशत कर्मचारी वर्क फ्राम होम करेंगे और 500 नई पर्यावरण बसे चलेंगी। हॉट-स्पॉट के लिए स्पेशल टास्क फोर्स बनेगी। औद्योगिक प्रदूषण की मानिटरिंग के लिए 33 टीमों का गठन किया गया है। दिल्ली के पर्यावरण मंत्री गोपाल राय ने दिल्ली सचिवालय में महत्वपूर्ण प्रेस वार्ता को संबोधित किया। उन्होंने बताया कि दिल्ली में प्रदूषण की सीवियर स्थिति को देखते हुए सीक्यूएएम ने ग्रैप के चौथे चरण को लागू करने का निर्देश दिया था। इसी के मद्देनजर आज से दिल्ली में जो प्रतिबंद्ध लगे हुए हैं, उसको और भी कड़ा किया जा रहा है। निर्माण एवं विध्वसं कार्य पर पहले से ही प्रतिबंध लगा हुआ है लेकिन अभी तक कुछ कैटेगरी के निर्माण एवं विध्वंस की गतिविधियों को छूट दी गई थी। उनमें से हाइवे, फलाईओवर एवं सड़कें, दिल्ली जल बोर्ड के पाइप लाइन तथा पावर ट्रांसमिशन के कार्य पर अब बैन लगाया जा रहा है। परिवहन विभाग, एमसीडी, कंस्ट्रक्शन एजेंसियों, जीएडी, राजस्व, डीपीसीस तथा पर्यावरण विभाग एवं अन्य संबंधित विभागों के अधिकारियों के साथ बैठक के बाद यह निर्णय लिया गया। ग्रेप के नये प्रतिबंधों को दिल्ली में लागू करते हुए, आवश्यक सेवाओं से जुड़े वाहनों के अलावा अन्य डीजल वाहन दिल्ली में प्रतिबंधित होंगे। केवल सीएनजी, पेट्रोल एवं इलेक्ट्रिक वाहनों को ही दिल्ली में प्रवेश दिया जाएगा।

केजरीवाल सरकार ने विधवा कॉलोनी की पीड़ितों के लिए मालिकाना अधिकारों की घोषणा नहीं की

केजरीवाल सरकार ने 1984 पीड़ितों के घावों पर नमक छिड़का : दिल्ली गुरुद्वारा कमेटी

नई दिल्ली। दिल्ली सिख गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष सरदार हरमीत सिंह कालका और महासचिव सरदार जगदीप सिंह काहलों ने अरविंद केजरीवाल के नेतृत्व वाली आम आदमी पार्टी की सरकार द्वारा 1984 की पीड़ित महिलाओं को विधवा कॉलोनी के मालिकाना अधिकार नहीं देने पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है और कहा है कि ऐसा न कर केजरीवाल सरकार ने पीड़ितों के जख्मों पर नमक छिड़का है।

आज यहां एक प्रेस वार्ता को संबोधित करते हुए सरदार कालका और सरदार काहलों ने कहा कि 1984 सिख नरसंहार के शहीदों को श्रद्धांजलि देने के लिए आज गुरुद्वारा शहीदगंज साहिब तिलक विहार में श्रद्धांजलि समागम आयोजित किया गया था जहां श्री अखंड पाठ साहिब के भोग डाले गऐ। उन्होंने कहा कि पिछले 4 दिनों से यह घोषणा की जा रही थी कि आज के आयोजन में मुख्यमंत्री केजरीवाल या फिर उपमुख्यमंत्री मनीष सिसोदिया स्वयं आ कर तिलक विहार की विधवा कॉलोनी में रहने वाले विधवाओं के परिवारों के लिए मालिकाना अधिकार देने की घोषणा करेंगे। लेकिन कार्यक्रम में पहुंचे केजरीवाल सरकार के राजस्व मंत्री कैलाश गहलोत और विधायक जरनैल सिंह ने एक बार फिर पीड़ितों के साथ टालमटोल करते हुए कहा कि उनका मालिकाना हक दिलाने के लिए जल्द ही मुख्यमंत्री के साथ सलाह की जाएगी जबकि मालिकाना अधिकार देने का फैसला राजस्व मंत्री को करना होता है लेकिन वह भी यही कहते रहे कि केजरीवाल के साथ विचार विमर्श करेंगे। ऐसा व्यवहार करके इन लोगों ने पीड़ितों के जख्मों पर नमक छिड़का है और उनकी पीढ़ा का मजाक उड़ाया है।

सरदार कालका और सरदार कहलों ने कहा कि आज संगत उम्मीद लगाऐ बैठी थी कि आज घोषणा हो जाएगी, लेकिन जब ऐसा नहीं हुआ तो संगत आक्रोषित हो गई। बहुत ही अफसोस की बात है कि केजरीवाल ने इंदिरा गांधी की पुण्यतिथि पर तो श्रद्धांजलि दी लेकिन 1984 के सिख नरसंहार के शहीदों को श्रद्धांजलि भेंट नहीं की। स: भगवंत मान का दोहरा चरित्र लोगों के सामने है।

दोनों नेताओं ने कहा कि केजरीवाल सरकार ने आज जो किया है उसकी जितनी निंदा की जाए बहुत कम है। दिल्ली सिख गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी हमेशा पीड़ितों के साथ खड़ी रही है और आगे भी लड़ाई लड़ेगी फिर चाहे सड़क पर उतर कर लड़ाई क्यों न लड़नी पड़े। उन्होंने कहा कि हम ऐसी योजना बनाएंगे ताकि कॉलोनी के मालिकाना हक भी पीड़ित परिवारों को मिले तथा उन्हें भेजे गए लाखों रुपये के बिजली बिल भी माफ हों।

उन्होंने कहा कि हमने पहले भी बिजली बिल का मुद्दा उठाया था लेकिन अब हम इसे सुलझाकर ही दम लेंगे। उन्होंने विधायक जरनैल सिंह की भी आलोचना की कि तिलक विहार के लोगों ने उन्हें तीन बार चुना है लेकिन वह पीड़ितों को मालिकाना हक नहीं दिला सके जिसके चलते पीड़ितों ने आज मंत्री व उनका घेराव किया।

दिल्लीवासी खतरनाक प्रदूषण से जहरीली वायु में जीने को मजबूर

केजरीवाल तुरंत प्रभाव से इस्तीफा दें: चौ0 अनिल कुमार

आनंद राय/गौरवशाली भारत

नई दिल्ली। दिल्ली प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष चौ0 अनिल कुमार ने आज दिल्ली ''प्रदूषण ऑन-केजरीवाल गॉन'' अभियान के तहत आनन्द विहार टर्मिनल पर लगे स्मॉग टावर की वास्तविकता को उजगार करते हुए प्रदूषण में केन्द्र और दिल्ली सरकार की विफलता उजागर किया। मुख्यमंत्री अरविन्द केजरीवाल ने दिल्ली को प्रदूषण मुक्त करने का दावे कर रहे थे वो पूरी तरह खोखले साबित हो गए है।

जहां केजरीवाल ने अपने7वर्षों तक के कार्यकाल में पंजाब, हरियाणा सहित पड़ोसी राज्यों को पराली जलाने को दिल्ली के प्रदूषण का मुख्य कारण बताते थे, आज पंजाब के मुख्यमंत्री मान के साथ प्रेसवार्ता करके पराली के प्रदूषित प्रभाव को नकारने का बयान दे रहे है। दिल्लीवासियों को गैस चेम्बर में जीने को मजबूर छोड़ने वाले और प्रदूषण नही नियंत्रित करने में विफलता को स्वीकारने के बाद अरविन्द केजरीवाल तुरंत प्रभाव से मुख्यमंत्री पद इस्तीफा दें। चौ0 अनिल कुमार ने कहा कि आज दिल्लीवासी प्रदूषित, जहरीली वायु में जीने को मजबूर हैं। उन्होंने कहा कि केन्द्र सरकार द्वारा एक महीने पहले 15 करोड़ की लागत से बने आनन्द विहार के स्मॉग टावर के ठीक नीचे लगभग 500 एक्यूआई दर्ज होना, स्मॉग टावर की क्षमता पर सवाल उठाता है, जबकि इसके रख-रखाव में 3 लाख महीने का खर्च आता है। उन्होंने कहा कि अरविन्द केजरीवाल द्वारा अपने मत में पल-पल बदलाव करना उनके बेहरुपिये चरित्र को उजागर करता है।

पंजाब और दिल्ली में उनकी सरकार होने पर प्रदूषण पूरे नार्थ इंडिया होता है, कहकर केन्द्र सरकार को जिम्मेदार बताकर आम आदमी पार्टी के मुखिया अरविन्द केजरीवाल अपनी जिम्मेदारी से भाग नही सकते। दिल्ली में खतरनाक प्रदूषण के लिए दिल्ली सरकार जिम्मेदार है, जिन्होंने वक्त रहते प्रदूषण रोकथाम पर कोई ठोस कदम नही उठाया।

संजय बेनीवाल होंगे तिहाड़ जेल के नए डीजी

नई दिल्ली। ठग सुकेश चंद्रशेखर की मदद करने के आरोपी दिल्ली की तिहाड़ जेल के महानिदेशक संदीप गोयल का तबादला कर दिया गया है। गोयल की जगह अब संजय बेनीवाल को तिहाड़ का नया डीजी बनाया गया है। सुकेश चंद्रशेखर द्वारा जेल में संरक्षण के एवज में 10 करोड़ रुपये की जबरन वसूली के आरोप लगाए जाने के कुछ दिन बाद तिहाड़ जेल के महानिदेशक संदीप गोयल का तबादला किया गया है। सुकेश ने बीते दिनों दिल्ली के एलजी को पत्र लिखकर संदीप गोयल पर कई गंभीर आरोप लगाए थे।

दिल्ली के गृह विभाग के डिप्टी सेक्रेटरी शैलेश कुमार की ओर शुक्रवार को जारी आदेश के मुताबिक, 1989 बैच के एजीएमयूटी कैडर के आईपीएस अधिकारी और डीजी जेल का तबादला कर अगले आदेश तक पुलिस मुख्यालय में रिपोर्ट करने को कहा गया है।

वहीं, अब उनके स्थान पर 1989 बैच के एजीएमयूटी कैडर के आईपीएस अधिकारी संजय बेनीवाल को नया डीजी जेल बनाया गया है। बेनीवाल इससे पहले स्पेशल कमिश्नर (पर्सेप्शन मैनेजमेंट एंड मीडिया सेल) के पद पर तैनात थे।

दिल्ली की मंडोली जेल में बंद सुकेश चंद्रशेखर ने बीते दिनों दिल्ली के उपराज्यपाल वीके सक्सेना को पत्र लिखकर आरोप लगाया था कि सत्येंद्र जैन ने उससे 2019 में जेल में उसकी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए 10 करोड़ रुपये की उगाही की थी। सुकेश चंद्रशेखर ने यह पत्र सात अक्टूबर को लिखा था। उसके वकील अशोक के सिंह ने आठ अक्टूबर को यह पत्र उपराज्यपाल को दिया।

पत्र में आगे आरोप लगाया गया था कि इस प्रकार सत्येंद्र जैन को कुल 10 करोड़ रुपये और डीजी जेल संदीप गोयल को 12.50 करोड़ रुपये दिए गए। पत्र में यह भी कहा गया है कि सुकेश चंद्रशेखर ने प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) को भी यह जानकारी दी थी। उसने आरोप लगाया था कि जैन अब तिहाड़ में बंद हैं, वह मुझे डीजी जेल और जेल प्रशासन के माध्यम से धमकी दे रहे हैं।

दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी द्वारा सतर्कता जागरूकता सप्ताह (31 अक्टूबर-6 नवम्बर 2022)

भारत को भ्रष्टाचार मुक्त और विकसित बनाने में पुस्तकालयों की भूमिका विषय पर व्याख्यान का आयोजन

संवाददाता/गौरवशाली भारत

नई दिल्ली। दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी द्वारा सतर्कता जागरूकता सप्ताह (31 अक्टूबर - 6 नवम्बर 2022) के अंतर्गत दिनांक 03 नवम्बर 2022 को दोपहर 03:00 बजे भारत को भ्रष्टाचार मुक्त और विकसित बनाने में पुस्तकालयों की भूमिका विषय पर व्याख्यान का आयोजन किया गया। यह कार्यक्रम दिल्ली लाइब्रेरी बोर्ड के अध्यक्ष श्री सुभाष चंद्र कानखेड़िया की अध्यक्षता एवं दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी के महानिदेशक डॉ. आर. के. शर्मा के मार्गदर्शन में आयोजित किया गया। कार्यक्रम में इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान के प्राध्यापक एवं मुख्य सतर्कता अधिकारी प्रो. जयदीप शर्मा मुख्य वक्ता के रूप में उपस्थित रहे।

दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी की सहायक पुस्तकालय एवं सूचना अधिकारी, उर्मिला रौतेला द्वारा मंच संचालन करते हुए श्रोताओं के सम्मुख कार्यक्रम की विषय-वस्तु प्रस्तुत की गई तथा सर्वप्रथम दीप प्रज्ज्वलन तथा लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल के चित्र पर पुष्पांजलि अर्पित करने के लिए मुख्य अतिथि तथा मंचासीन अधिकारियों को आमंत्रित किया गया। महानिदेशक, डॉ. आर. के. शर्मा ने उपस्थित सभी गणमान्य जनों एवं श्रोताओं का कार्यक्रम में स्वागत किया। उन्होंने कार्यक्रम के मुख्य वक्ता प्रो. जयदीप शर्मा का परिचय एवं कार्यक्रम की रूपरेखा रखी। सतर्कता जागरूकता पर चर्चा करते हुए उन्होंने भ्रष्टाचार को अंतर्राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में साझा किया और भ्रष्टाचार मुक्त भारत के निर्माण के लिए सभी को जागरूक होने पर बल दिया है।

मुख्य वक्ता प्रो. जयदीप शर्मा ने बताया कि वह लगभग साढ़े तीन साल से इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय में सतर्कता अधिकारी के रूप में कार्यरत हैं। भ्रष्टाचार से मुक्ति में आचार-विचार और नैतिकता महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। किसी भी संस्थान में कार्य करते हुए, हमें उस संस्थान को पूजा स्थल के रूप में देखना चाहिए और नैतिकता का पालन करना चाहिए। उन्होंने हमारे सभ्यता के विकास तथा पुस्तकालयों के विकास को समानांतर विकसित होने की प्रक्रिया बताया तथा यह भी बताया कि शिक्षा प्राप्ति की कोई आयु नहीं होती, यह जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। उन्होंने कहा कि उनके अनुसार पुस्तकालय वह हर कार्य करते हैं, जिससे राष्ट्र का उत्थान हो। उन्होंने भ्रष्टाचार मुक्त राष्ट्र बनाने में देश के युवाओं की भूमिका पर बल दिया और भ्रष्टाचार को खत्म करने में शिक्षा का महत्व, जवाबदेही, नैतिकता, रिकॉर्ड प्रबंधन, सतर्कता मैनुअल, प्रौद्योगिकी, आईसीटी प्रबंधन आदि के सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा की। अध्यक्ष श्री सुभाष चंद्र कानखेड़िया ने भारत को संगठित करने वाले सरदार वल्लभ भाई पटेल को नमन करते हुए अपना वक्तव्य प्रारंभ किया। उन्होंने बताया कि हमारी समस्या यह है कि हम अपने लाभ के लिए नियमों को तोड़-मरोड़ देते हैं और यह अंतत: भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते है। किसी भी कार्य को करने से पहले हमें अपनी अंतरात्मा से यह चिंतन करना चाहिए कि जो हम करने जा रहे हैं वह सही है या नहीं ? उन्होंने कहा कि बचपन से बच्चों में सदगुणों और नैतिकता का प्रवाह करने में महिलाओं की अहम भूमिका है। अंत में उर्मिला रौतेला द्वारा आमंत्रित अतिथियों एवं श्रोताओं को धन्यवाद ज्ञापित करने के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

विधायक जरनैल सिंह 1984 सिख नरसंहार पीड़ित परिवारों के अधिकारों की रक्षा करने में विफल रहने पर अपना इस्तीफा दें : जसमेन सिंह नोनी

संवाददाता/गौरवशाली भारत

नई दिल्ली। दिल्ली सिख गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के संयुक्त सचिव सरदार जसमेन सिंह नोनी ने आम आदमी पार्टी के विधायक जरनैल सिंह को 1984 सिख नरसंहार के पीड़ित परिवारों के अधिकारों की रक्षा करने में असफल रहने पर इस्तीफे की मांग की है।

यहां जारी एक बयान में सरदार जसमेन सिंह नोनी ने कहा कि यह बहुत आश्चर्य की बात है कि तिलक नगर क्षेत्र की संगत ने उन्हें 3 बार विधायक चुना लेकिन वह पिछले 8 वर्षों से 1984 सिख नरसंहार पीड़ितों के अधिकारों की रक्षा करने में नाकाम रहे।

विधवा कालोनी में रहने वाली विधवाओं को मालिकाना हक तो नहीं मिला विपरीत उन्हें पांच-पांच लाख रुपये के बिजली बिल भेज दिए गए जबकि मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल मुफ्त बिजली का दावा करते नहीं थकते।

जसमेन सिंह नोनी अध्यक्ष एवं महासचिव दिल्ली सिख गुरुद्वारा प्रबंधन समिति नई दिल्ली

उन्होंने कहा कि स्पष्ट है कि आम आदमी पार्टी और कांग्रेस के बीच आंतरिक तौर पर गठबंधन है जिसके चलते आप सरकार कांग्रेस से दो कदम आगे है और 1984 के सिख नरसंहार के पीड़ितों को परेशान कर रही है। उन्होंने यह भी घोषणा की कि अगर सरकार इन पीड़ितों के घरों का बिजली कनेक्शन काटने की कोशिश करती है, तो दिल्ली गुरुद्वारा कमेटी और सिख संगत इसे बर्दाश्त नहीं करेगी तथा मौके पर पहुंचकर इसका कड़ा विरोध किया जाएगा।

दिल्ली गुरुद्वारा कमेटी के संयुक्त सचिव ने कहा कि आश्चर्य की बात यह है कि आज भी जब 1984 सिख नरसंहार के शहीदों को श्रद्धांजलि देने के लिए एक समारोह आयोजित किया तो उस समारोह में पीड़ितों के अधिकारों की घोषणा करने के बजाय विधायक जरनैल सिंह टालमटोल करने का प्रयास करते रहे जिस पर संगत में रोष आ गया और मंत्री का घेराव किया।

उन्होंने कहा कि अगर आप सरकार पीड़ितों को जल्द ही मकान मालिकों के अधिकार नहीं देती है तो दिल्ली गुरुद्वारा कमेटी संगत के समर्थन से लड़ेगी और पीड़ित परिवारों को न्याय दिलाएगी।

एलिवेटेड रोड पर कार पर चढ़कर डांस करते युवकों का वीडियो वायरल

नोएडा। सोशल मीडिया पर एक वीडियो वायरल हुआ है। इस वीडियो में कुछ युवक कार की छत पर चढ़कर डांस करते हुए नजर आ रहे हैं। उन्होंने तेज आवाज में गाने चला रखे हैं। पुलिस ने वीडियो देखने के बाद युवकों की तलाश शुरू कर दी है। ट्विटर सहित अन्य सोशल मीडिया प्लेटफार्म पर एक वीडियो शुक्रवार को वायरल हो गया। वायरल वीडियो में नजर आ रहा है कि कुछ युवक तेज आवाज में म्यूजिक चलाकर कार की छत पर चढ़कर डांस कर रहे हैं। यह वीडियो इस्कॉन मंदिर के पास एलिवेटेड रोड का बताया जा रहा है। एक युवक ने वीडियो बनाकर सोशल मीडिया पर पोस्ट किया है। वीडियो देखने के बाद कई यूजर्स ने युवकों के खिलाफ कार्रवाई करने की मांग की है।

हिंदी विदेशों में अपने साथ कला संस्कृति और सभ्यता भी लेकर जाती है : ऋषि कुमार शर्मा

गाजियाबाद। डी.ए.वी. विद्यालय, साहिबाबाद और यू.के. हिंदी समिति, लंदन के तत्वावधान में 'विश्व मंच पर हिंदी' विषय पर एक संवाद कार्यक्रम का आयोजन किया गया जिसमें इंग्लैंड से आए 20 सदस्य प्रतिनिधि मंडल ने भी भाग लिया और कार्यक्रम में हिंदी अकादमी दिल्ली के उपसचिव श्री ऋषि कुमार शर्मा, ए.वी.बी. पी. नेटवर्क के एसोसिएट उपाध्यक्ष, शिशिर रंजन, वरिष्ठ पत्रकार, प्रियंका सिंह, तरुण कुमार, सहायक निदेशक ग्रामीण विकास मंत्रालय, यू.के. हिंदी समिति, लंदन की अध्यक्ष सुरेखा चोफला विशिष्ट अतिथि तथा प्रवक्ता के रूप में उपस्थित कार्यक्रम में थे।

कार्यक्रम का संयोजन और संचालन कवयित्री नंदिनी श्रीवास्तव ने किया। इस अवसर पर बोलते हुए हिंदी अकादमी के उपसचिव, हिंदी अकादमी, दिल्ली ऋषि कुमार शर्मा ने कहा कि विदेशों में हिंदी का प्रचार-प्रसार और आवश्यकता तेजी से बढ़ती जा रही है हिंदी भाषा जब विदेशों में जाती है तो अपने साथ भारत की संस्कृति, कला और सभ्यता भी साथ लेकर जाती है आज 145 देशों के 115 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। एबीपी नेटवर्क के उपाध्यक्ष शशि रंजन ने कहा कि आज मीडिया सारा काम हिंदी में करता है हिंदी ही दर्शकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ती है। इस अवसर पर बोलते हुए वरिष्ठ पत्रकार प्रियंका सिंह ने कहा कि हमारे बारे में चाहे कोई कुछ भी सोचे हमें हिंदी बोलने में गर्व का अहसास होता है और हम हिंदी में कार्य करते हैं यू.के. हिंदी समिति लन्दन की अध्यक्ष सुरेखा चोफला ने कहा कि हम कई देशों में हिंदी प्रचार प्रसार का काम कर रहे हैं पर हमें भारत में भी हिंदी को उचित स्थान देना होगा।

श्री तरुण कुमार सहायक निदेशक ग्रामीण विकास मंत्रालय ने कहा हमने सरकार और स्वयं के प्रयासों से लंदन में भारतीय दूतावास के दरवाजे हिंदी और हिंदी सिखाने के लिए खोल दिए थे।

विद्यालय के प्राचार्य श्री वीके चोपड़ा ने समस्त अतिथियों का अभिनंदन किया और कहा हिंदी भाषा के संवर्धन में प्रवासी नागरिकों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है हिंदी हमारी राजभाषा है हिंदी के विकास हेतु हमें सदैव तत्पर रहना चाहिए।

तत्पश्चात विद्यालय परंपरा के अनुसार समस्त अतिथियों ने दैनिक यज्ञ में भाग लिया भारतीय परंपरा के अनुसार विद्यार्थियों ने विभिन्न प्रांतों के लोक नृत्य प्रस्तुत कर विदेशी अतिथियों को भारत की संपन्न संस्कृति से परिचय कराया।

दीप प्रज्वलन और ओम की ध्वनि के साथ के साथ समारोह का शुभारंभ किया गया इस ऊर्जावान अवसर पर विद्यालय के विद्यार्थियों और विदेशी विद्यार्थियों ने कविता पाठ कर श्रोताओं को मंत्र मुक्त कर दिया कार्यक्रम का संयोजन और संचालन श्रीमती कवयित्री श्रीमती नन्दिनी श्रीवास्तव ने किया वरिष्ठ साहित्यकार श्रीमती जया वर्मा, लंदन श्री मयंक राजेश कवि और राहुल शेष भी उपस्थित थे।

संपादकीय

महंगाई नहीं रोक पा रहा आरबीआई

महंगाई पर काबू पाने को लेकर एक बार फिर केंद्रीय रिजर्व बैंक ने भरोसा जताया है। आरबीआईं के गवर्नर ने कहा है कि बैंक की नजर महंगाई पर लगातार बनी हुई है और जल्दी ही इस पर काबू पा लिया जाएगा। इस बात को उन्होंने उपलब्धि के रूप में रेखांकित किया कि समय रहते ब्याज दरों को संतुलित कर महंगाई की तीव्रता को रोक लिया गया, नहीं तो स्थिति और बुरी हो सकती थी। हालांकि रिजर्व बैंक का मकसद है कि महंगाई को अगर छह फीसद के स्तर पर रोक दिया जाए, तो वह सहन करने लायक हो सकती है। मगर पिछली तीन तिमाहियों यानी नौ महीने से महंगाई पर अंकुश लगा पाना रिजर्व बैंक के लिए मुश्किल बना हुआ है।

इस संबंध में वह सरकार को रिपोर्ट भी सौंपेगा कि क्यों वह महंगाई को नहीं रोक पाया। नियम के मुताबिक उसे ऐसा करना जरूरी है। इससे यह कयास पुख्ता हुआ है कि रिजर्व बैंक एक बार फिर ब्याज दरों में बढ़ोतरी का फैसला कर सकता है। इसके पहले थोड़े-थोड़े समय बाद रेपो दरों में बढ़ोतरी के सकारात्मक नतीजे भी सामने आए हैं, जिससे स्वाभाविक ही एक बार फिर रेपो दरों में बढ़ोतरी का दबाव बना हुआ था।

हालांकि महंगाई को चार फीसद पर रोकना अर्थव्यवस्था के लिए बेहतर माना जाता है, मगर कोरोना महामारी और फिर कच्चे तेल की कीमतों में लगातार उतार-चढ़ाव और वैश्विक आर्थिक उथल-पुथल के बीच इसे साधना कठिन होता गया।

अब उसका अनुमान है कि अगले वित्तवर्ष तक महंगाई का रुख नीचे की तरफ हो जाएगा। मगर महंगाई पर काबू पाने के लिए केवल रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति कारगर औजार साबित नहीं होती। इस वक्त अर्थव्यवस्था के मामले में सभी मोर्चों पर चुनौतियां बनी हुई हैं। अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमत अनिश्चित रुख बनाए हुई है।

व्यापारिक गतिविधियां काफी कमजोर स्थिति में हैं। निर्यात की दर चिंताजनक स्तर पर नीचे पहुंच गई है, जबकि आयात लगातार बढ़ रहा है। ऐसे में विदेशी मुद्रा भंडार छीज रहा है।

घरेलू बाजार में रौनक इसलिए नहीं लौट पा रही कि लोगों की क्रयशक्ति काफी कमजोर हो चुकी है। इसका बड़ा कारण बहुत सारे लोगों का काम-धंधा बंद हो जाना, नौकरियां खो देना, छोटे, मंझोले और लघु उद्योगों का बंद हो जाना है। हालांकि सरकार ने नए सिरे से कारोबार शुरू करने के लिए आसान शर्तों पर कर्ज उपलब्ध कराने की घोषणा की, पर उससे लोग उत्साहित नजर नहीं आए। इस तरह रोजगार के मामले में अनिश्चितता बनी हुई है।

रिजर्व बैंक ने रेपो दर में बढ़ोतरी कर बचत को आकर्षित करने में तो कुछ कामयाबी हासिल की, मगर जिन लोगों ने कर्ज लेकर काम-धंधे शुरू किए थे, उन पर ब्याज का बोझ बढ़ गया। फिर तेल की कीमतें कम न होने की वजह से उत्पादन पर असर पड़ रहा है, वस्तुओं की कीमतें लगातार बढ़ रही हैं।

सबसे चिंता की बात यह कि थोक महंगाई पर काबू नहीं पाया जा पा रहा है। साफ है कि बड़े उद्योगों में उत्पादन और उनके उत्पाद की मांग घटी है। इस तरह अर्थव्यवस्था में इस क्षेत्र का योगदान तीन फीसद के आसपास पहुंच गया है। रिजर्व बैंक मौद्रिक नीति से बाजार में पूंजी के प्रवाह को संतुलित करने का प्रयास तो कर सकता है, मगर केवल इतने से महंगाई पर काबू पाने का दावा करना मुश्किल है।

निठल्लों का औजार, सोशल मीडिया

जैसा की किताब का नाम ही है उससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि यह कृति घर द्वार और आमदनी की वृत्तियों से फुर्सत पाए निठल्लों पर पर केंद्रित ही है, निठल्लों का औजार सोशल मीडिया है या निठल्ला करने का औजार सोशल मीडिया है। सृजन मनुष्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं उपदिय कार्य है, मेरी अवधारणा है कि साहित्य में ही सृजक व्यंग्यकार आलोचक से श्रेष्ठ होता है और यहां भी व्यंग्यकार आलोचक से बड़ा ही है। वह इस किताब के माध्यम से साहित्यिक परिवेश में सृजनात्मक प्रतिभा के धनी हैं साथ ही समाज के हर पहलू पर सार्थक गंभीरता के साथ प्रस्फुटित हुए हैं। वैसे मेरा यह मानना है जो सर्जक अपने विषय वस्तु का चयन बुद्धिमानी करता है उसे ना तो शब्दों और ना ही प्रांजल विन्यास में कठिनाई अथवा असफलता मिलती है, किसी नवीन साहित्यकार निर्माण से मस्तिष्क की उपादेयता सोच का समन्वयात्मक दृष्टिकोण को एकीकृत करके ही पूर्ण किया जा सकता है। पूर्व से ही स्थापित साहित्यिक सिद्धांतों को प्रतिपादित कर स्वच्छ वैचारिक अवधान से ही कवि, कथाकार और व्यंग्यकार कुछ कर सकता है। संभवत इसके लिए भाषा का शुद्ध होना ,प्रांजल बोधगम्य एवं प्रभाव युक्त होना अत्यंत आवश्यक तत्व होते हैं, जो इस व्यंग में स्थापित होते दिखाई दे रहे हैं। साहित्य में कोई भी रचना किसी उद्देश्य को लेकर लिखी जाती है और व्यंग तो खासकर समाज में व्याप्त चारों तरफ विसंगतियों कुरीतियों और सर्व व्याप्त अराजकता को इंगित करने और दर्शाने हेतु एक संदेश देने के लिए लिखा जाता है, जाहिर है विसंगतियां और समाज की कुरीतियों द्वारा द्वारा अपनी कार्यप्रणाली से ही पैदा की जाती है तो निशाना वर्तमान सरकार और शासन प्रशासन, और राजनीतिक दल ही होता है इसे धारा के विपरीत या बहती हवा के खिलाफ लिखा जाना कहा जाता है। इस कृति में व्यंग्यकार ने अपनी लेखनी व्यंग पर पूर्ण अधिकारिता के साथ चलाइ है,उनके लेखन में लयात्मकता के साथ आधुनिकता है कटाक्ष के प्रतिपादक तो है ही पर नवीन बोधगम्यता और ऊर्जा के साथ उन्होंने अपरिचित एवं नवीन शब्दों का प्रयोग अद्भुत तरीके से किया है। वाक्य संरचना काफी कलात्मक है सही शब्दों के प्रयोग के साथ उपयुक्त स्थलों पर प्रयोग व्यंग्य की प्रासंगिकता को दुगना करती इस व्यंग के प्रयोजनों में आनंद एवं सामाजिक संदेश की अवधारणा भी है। लेखक के शास्त्र वादी होने के साथ कलात्मकता भी व्यंग्य और कटाक्ष में पूर्ण संभावित दिखाई देती है। उनका लेखन पूर्ववर्ती लेखकों के अनुकरण के साथ नवीन सृजन प्रधान भी है। वस्तुत: व्यंगकार यथार्थ परख सामाजिक दृष्टि के साथ और उसके प्रभाव की नई प्रवृत्ति का प्रवर्तन करता है। अपने व्यंग वर्चुअल मीटिंग में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है की डिजाइनर मास्क तथा फैशन शो का आगाज हो चुका है और करोना कॉल में ऑनलाइन कार्यक्रमों की भरमार हो चुकी है कवियों लेखकों की संख्या टिड्डी दल की तरफ बढ़ गई है। उनके व्यंग में असामाजिक असंगति के प्रति निर्मम व्यंग एवं अनुभूत आक्रोश का भाव भी अति स्पष्ट है। निठल्लों का औजार सोशल मीडिया की बात करें तो वैश्विक परिदृश्य में भी जो निठल्ले हैं जैसे अमेरिका में ही ले लीजिए पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा, डोनाल्ड ट्रंप सोशल मीडिया के जरिए ही अपना समय काट रहे हैं और व्हाट्सएप, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम उनके साथी यार दोस्त हो गए हैं। डोनाल्ड ट्रंप को तो कई मीडिया हाउस ने अपने बड़बोले पन के कारण निकाल भी दिया है। अब ब्रिटेन में कंजरवेटिव पार्टी के ही बोरिस जॉनसन ,लीज ट्रस विपक्षी दल की तरह ऋषि सुनक के विरोध में उनकी खाट खड़ी कर रहे हैं और सोशल मीडिया में धूम मचाए हुए है। जब तक सत्ता में काबिज नहीं हुए थे ब्रिटेन के वर्तमान प्रधानमंत्री ऋषि सुनक सोशल मीडिया के जरिए ही लोगों को प्रभावित करने में लगे थे। निठल्लों का औजार सोशल मीडिया पाकिस्तान के लिए सर्वाधिक उपयुक्त बैठता है, सत्ता से बाहर आने के बाद इमरान खान और उनकी पूरी फौज तो सोशल मीडिया के दम पर ही अपनी तूती बुलवा रहे थे। अब इमरान पर हमला होने के बाद सोशल मीडिया उनका माई बाप बन गया और पूरे विश्व में धूम घूम घर हमले का प्रचार प्रसार कर रहे हैं, हालांकि यह अमानवीय क्रूर हिंसा की हम सदैव निंदा करते हैं।

अय्याशी और देह व्यापार के नए अड्डे बने ओयो रूम्स

मनोज कुमार अग्रवाल

देश के कई हिस्सों से समय समय पर आ रहे समाचारों से यह जाहिर होता है कि ओयो होटल अय्याशी के नए अड्डों के बतौर इस्तेमाल किये जा रहे हैं।

हाल ही में उत्तर प्रदेश में भी एक दर्जन से अधिक शहर कस्बों में समय समय पर की गई कार्रवाई में ओयो रूम्स का गलत व नाजायज इस्तेमाल कर रहे जोड़ों को पकड़ा जा चुका है। ताजा मामला पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सम्भल शहर से जुड़ा हुआ है जहां ओयो होटल के नाम पर संचालित किए जा रहे एक अपंजीकृत होटल से सात युवा जोड़े आपत्तिजनक हालात में पकड़े गए हैं।

संभल शहर में पुलिस ने एसडीएम और सीओ की अगुवाई में बुधवार दोपहर में ओयो रूम्स होटल पर छापा मारकर 14 युवक-यवतियों को सात अलग-अलग कमरों से आपत्तिजनक स्थिति में पकड़ा है। इनके पास से आपत्ति जनक सामग्री यथा यूज्ड कंडोम और कामोत्तेजक गोलियां भी बरामद हुई हैं। पकड़ी गई युवतियों में से कई शहर के स्कूलों की छात्राएं बताई जा रही हैं। सात युवक और सात युवतियों के साथ ही पुलिस ने होटल के मैनेजर को भी गिरफ्तार कर लिया है, जबकि मालिक फरार हो गया।

पुलिस अधिकारियों को सूचना मिली थी कि चंदौसी रोड पर लोक निर्माण विभाग के निरीक्षण भवन के सामने ओयो रूम्स होटल जेके गेस्ट हाउस में अनैतिक कारोबार किया जा रहा है। इसके बाद एसडीएम विनय मिश्रा और सीओ जितेंद्र सरगम की अगुवाई में कोतवाली पुलिस ने जेके गेस्ट हाउस पर छापा मारा।

पुलिस ने कमरे खुलवाये तो सात कमरों में युवकों के साथ आपत्तिजनक हालत में सात युवतियां मिलीं। कई कमरों में यूज्ड और नये कंडोम के साथ ही कामोत्तेजक गोलियां भी मिलीं। पुलिस ने सभी युवक-युवतियों को गिरफ्तार कर लिया। होटल के मैनेजर किशन निवासी हसनपुर जनपद अमरोहा को भी गिरफ्तार कर लिया गया, जबकि होटल मालिक फरार हो गया। अपर पुलिस अधीक्षक श्रीशचंद्र ने बताया कि मुकदमा दर्ज कर कार्रवाई की जा रही है।

अभी एक पखवाड़ा पहले ही नोएडा पुलिस ने हिडन कैमरे से कपल्स के वीडियो बना कर उनको ब्लैकमेल करने वाले गैंग को पकड़ा है। ये लोग ओयो के होटल में अलग-अगल हिडन कैमरे लगाते थे। होटल में रुकने वाले कपल की पूरी हरकत रिकॉर्ड कर लेते थे।

इसके बाद उनको ब्लैकमेल कर रुपए मांगते थे। विरोध करने पर वीडियो वायरल करने की धमकी देते थे। इतना ही नहीं आरोपियों ने पास से कई अश्लील वीडियो मिले हैं। बकायदा इन लोगों ने इसके एक कॉल सेंटर बनाया हुआ था।

मिनी मुंबई कहे जाने वाले मध्य प्रदेश के इंदौर शहर में भी मुंबई की तर्ज पर हाल ही में 2 सितंबर को एक ओयो होटल में छापा मारा गया।

इस होटल में जिस्मफरोशी की सूचना थी। यहां भंवरकुआ पुलिस ने कार्रवाई करते हुए जिस्मफरोशी करते हुए 6 लड़कियों के साथ 6 लड़कों को गिरफ्तार किया। पुलिस ने इंदौर के भंवरकुआ थाना क्षेत्र के नवलखा स्थित ओयो होटल में चल रहे देह व्यापार के अड्डे पर छापा मारा था इस दौरान मौके से होटल संचालक सहित 12 लोगों को गिरफ्तार किया गया था।

एक माह पहले अलीगढ़ उत्तर प्रदेश के लोधा क्षेत्र में चिकावटी स्थित ओयो होटल की आड़ में एक होटल में देह व्यापार का धंधा चल रहा था। इस सूचना पर एसडीएम-सीओ ने संयुक्त रूप से छापा मारा।

इस दौरान मौके से एक किशोरी व दो महिलाओं सहित छह लोग गिरफ्तार किए हैं। इस दौरान तीन आरोपी फरार हो गए। गिरफ्तार लोगों को मुकदमा दर्ज कर जेल भेजने की कार्रवाई की गई।

आप को याद होगा इसी साल जनवरी में ग्रेटर नोएडा के थाना बीटा-2 पुलिस द्वारा मुजरा पार्टी मे शामिल और मुजरा पार्टी कराने वाले दो होटल संचालक समेत मुजरा/देह व्यापार में शामिल पांच लडकियों सहित 36 लोग गिरफ्तार किए गया था . कब्जे से 30 मोबाइल फोन, 1,30,500 रूपये नकद, 08 गाड़ियां, शराब की बोतले और अन्य आपत्तिजनक सामान बरामद किए गए थे। इस साल की अब तक की यह सबसे बड़ी रैड थी।

इस मामले में अभियुक्त अनुज निवासी बागपुर दनकौर के ओयो होटल, जिसका नाम स्वीट रैजिडेंसी ओयो था उसमें देर रात तक पार्टी चल रही थी. होटल मे हरियाणा के ब्रोकर के माध्यम से लडकियों को देह व्यापार के लिए बुलाया गया था। वहीं दो महीने पहले सितंबर में बागपत जनपद में उत्तर प्रदेश के बागपत में एसडीएम और सीओ ने पुलिस टीम के साथ बड़ौत में कई ओयो होटल में छापेमारी की।

छापा पड़ते ही होटलों में हड़कंप मच था इस दौरान टीम ने कई जोड़ों को भी पकडा था । वहीं कई होटल संचालक ताला लगाकर फरार हो गए थे इस दौरान प्रशासन अनुमति बगैर होटल संचालित किए जाने पर अधिकारियों ने नाराजगी जताते हुए होटल संचालकों को लताड़ लगाई और उसके रजिस्टर सहित अन्य कागजात जब्त कर लिए थे लेकिन बाद में पकड़े गए युवाओं के परिजनों को थाने बुला कर मामला दबा दिया गया था।

ओयो होटल संचालकों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई की मांग को लेकर हंगामा भी किया गया था। लोगों का कहना था कि यहां अनैतिक कार्य हो रहे हैं, इन होटलों को तत्काल बंद कराया जाना चाहिए। मामला बढ़ता देख पुलिस टीम खानापूर्ति कर चली गई थी। इसको लेकर भी लोगों ने नाराजगी जताई थी।

उत्तर प्रदेश समेत कई प्रदेशों के सैकड़ों छोटे बड़े शहर कस्बों में इन दिनों छोटे-छोटे भवनों में भी ओयो होटल्स की भरमार हो रही है इनमें सरकारी नियमों को अनदेखी कर ओयो रूम का टैग लगाकर होटल संचालित किए जा रहे हैं इनमें से कई ओयो होटल के रूम अय्याशी के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं कुकुरमुत्तों की तरह खुल रहे हैं होटलों के पास सरकारी नियमों के तहत पंजीकरण फायर सेफ्टी के संसाधन व परमिशन तथा अन्य विभागों की एनओसी भी उपलब्ध नहीं होती है इसके बावजूद ओयो रूम्स का टैग कर दिया जाता है सरकार को इन ओयो होटलों में संचालित की जा रही अनैतिक गतिविधियों की पड़ताल कर तत्काल सख्त कदम उठाने चाहिए।

परिवार एक अनमोल धरोहर

(श्वेता आर्या)
सामाजिक कार्यकर्ता

आज हम आपके परिवार से सम्बंधित विचार लेकर आयेहैं, इस रफ़्तार भरे दौर में हर व्यक्ति बहुत ज्यादा व्यस्त है अपने परिवार को भी समय देने के लिए उसके पास समय नहीं है परन्तु परिवार की अहमियत को समझें परिवार हम सब के जीवन में सबसे ज्यादा महत्त्व रखता हैद्यपरिवार एक पेड़ की शाखाओं की तरह होते हैं हम विभिन्न दिशाओं में बढ़ते हैं फिर भी हमारी जड़े एक सी रहती हैं बिना परिवार के हम किसी अच्छे उज्जवल सुखी जीवन की कल्पना तक भी नही कर सकतेद्य हर व्यक्ति के लिए इस संसार में सबसे महत्वपूर्ण अगर कुछ है तो वो उसका परिवार और उस परिवार को प्यार से रखनाद्यपरिवार जीवन का सुरक्षा कवच होता है, हमारा परिवार ही हमारी असली ताकत हैद्य वो परिवार जिसमे एकता होती है वो जीवन में हर मुश्किल घड़ी का सामना कर सकता है और बड़ी से बड़ी मुश्किलें मिनटों में खत्म कर सकता है। परिवार ही हमारी पहली पाठ्शाला होती है और माता पिता पहले अध्यापक जो हमें हर बातों से अवगत कराते हैं।

एक खुशहाल परिवार का प्यार जिन्दगी में सबसे बड़ा आशीर्वादहैद्य परिवार की कीमत हजारों अनाथ लोग समझ सकते है जिनका कोई परिवार नही होता वो लोग हमेशातरसते रहते हैं कि काश हमारा भी परिवार होताद्य हमारा परिवार ही हमकों ऊँचा और मजबूत खड़ा करने के लिए मजबूत नीव देता है द्य हमारे जीवन में कोई भी उतार चढ़ाव आता है हमारा परिवार ही हमारे लिए लाइफ जैकट का काम करता हैद्य हमारा घर कैसा भी हो मायने ये रखता है इसमे कितना सारा प्यार है, हम कहीं भी जाते हैं वहां चाहे बहुत सारी सुंदर चीजेंसुख सुबिधा हो परन्तु हम लौटकर अपने घर आते हैं जो हमें स्वर्ग से भी ज्यादा सुंदर लगता है। हम सब चाहे जितना भी व्यस्त रहे परन्तु परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को ईमानदारी से निभाना चाहियेद्य हमारा देश यहाँ की एकता अखण्डता और पारिवारिक महत्त्व के लिये विश्व प्रसिद्ध है परन्तु आज हमारी पारिवारिक अनमोल धरोहर को विदेश पलायन तोड़ती जा रही है। पैसे कमाने की होड़ में आज नौजवान अपने माता पिता को छोड़कर विदेश चले जाते है और फिर वहीं बस जाते हैद्य ये पलायन हमारे परिवार एवं देश के लिये उचित नहीं है जिसका परिवार पर बुरा असर पड़ रहा है। हमको हमारे परिवार से ही पहचान मिलती हैद्य पैसे कमाकर मनुष्य अपने भाग्य को बना सकता है परन्तु बहुत कम परिवार बना सकते हैं। आप का परिवार आपके लिये भगवान के उपहार स्वरुप है आप परिवार के लिये कितने भी व्यस्त रहें परन्तु अपने परिवार की उपेक्षा कभी ना करें।

मेरा ये मानना है मेरा परिवार ताकत और मेरी कमजोरी है द्य हर इन्सान को अपने परिवार को अपनी ताकत बनानी चाहिए और इस अनमोल धरोहर को हमेशा संभाल कर रखना चाहिए।

मोरबी त्रासदी से सबक ले देश

अवधेश कुमार

गुजरात के मोरबी पुल की त्रासदी ने पूरे देश को हिला दिया है। इस घटना की कल्पना से ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मच्छु नदी पर बनाया सस्पेंशन ब्रिज यानी झूलने वाला पुल पर्यटकों के आकर्षण का बड़ा कारण था। लेकिन कौन जानता था वहां पहुंचे लोगों में बड़ी संख्या के लिए अंतिम दिन होगा। पुल टूटा और नीचे नदी में 15 फीट के आसपास पानी था, जिसमें लोग डूबते चले गए। किसी भी त्रासदी में दो सौ लोगों का अंत हो जाना सामान्य घटना नहीं होती। गुजरात जैसे प्रदेश में जहां बचाव और राहत की मजबूत टीमें है वहां इतनी संख्या में लोगों की मृत्यु बताती है की घटना कितनी विकराल थी। वहां एनडीआरएफ और एसडीआरएफ के साथ तैराकों, दमकलों व वायु सेना के कमांडो ,रेस्क्यू नावेंआदि सब कुछ होने के बावजूद दूसरे दिन भी लापता लोगों का पता नहीं लग सका और इस कारण मृतकों की संख्या बताना कठिन हो गया। रात्रि में बचाव ऑपरेशन करना लगभग मुश्किल था। राजकोट के भाजपा सांसद मोहन कुंदरिया के परिवार के 12 लोगों की जान इसमें चली गई । पता नहीं और ऐसे कितने परिवार होंगे जिनके लिए यह संपूर्ण जीवन भर के लिए त्रासदी साबित होगी।

ध्यान रखिए कि यह प्राकृतिक आपदा नहीं है। न बाढ आया न तूफान और निरपराध लोग जान गंवा बैठे। पुल के रखरखाव की जिम्मेदारी वाले ओरेवा ग्रूप पर गैर इरादतन हत्या का मामला दर्ज हो गया है। जांच के लिए समिति भी बना दी गई है। कहा जा सकता है कि अंतिम निष्कर्ष के लिए समिति की रिपोर्ट की प्रतीक्षा की जानी चाहिए। निस्संदेह, इस समय आप किसी भी कारण को खारिज नहीं कर सकते। देश विरोधी ताकतें जिस तरह हिंसा और दुर्घटना पैदा करने के लिए षड्यंत्र कर रहे हैं उसमें चुनाव वाले गुजरात जैसे संवेदनशील प्रदेश में शंका की उंगली उठना बिलकुल स्वाभाविक है। आखिर ये शक्तियां भीड़भाड़ वाले जगहों पर अपने तरीके से ऐसी कोशिश करती हैं जिनमें ज्यादा से ज्यादा लोग हताहत हो। हालांकि अभी तक ऐसा कोई पहलू नहीं दिखा जिससे षड्यंत्र नजर आए।

अभी तक की जानकारी इतनी है कि फुल कमजोर था। दुर्घटना के पहले के वीडियो में दिख रहा है कि कुछ लोग उसके केबल के कमजोर होने का मजाक उड़ा रहे हैं। कुछ उसको हाथ पैरों से मार रहे हैं। कोई कह रहा है कि देखो यह कितना कमजोर है जो कभी भी टूट सकता है। करीब डेढ़ सौ वर्ष पुराना पुल कमजोर और जोखिम भरा था तभी मरम्मत के लिए 6 महीना पहले बंद कर दिया गया था। ओरोवो ग्रुप ने इसकी मरम्मत की तथा 26 अक्टूबर को आम लोगों के लिए खोला गया। यानी 4 दिन पहले खुला और पांचवें दिन 30 अक्टूबर को शाम को पुल टूट गया। यह कैसे संभव है कि एक मान्य कंपनी पुल की मरम्मत में इतनी कोताही बरते कि वह 4 दिन भी न चल पाए? वहां के नगर निगम का कहना है कि उस पुल की क्षमता 100 लोगों की है लेकिन 500 से 1000 के आसपास लोग उस पर इकट्ठे थे। 765 फीट लंबा यह पुल केवल 4.5 फीट चौड़ा है। जाहिर है, यह जिस काल में बनाया गया उस समय के लिए उपयुक्त हो सकता है।

बावजूद इतने लंबे पुल के लिए केवल 100 लोगों की क्षमता और वह भी आज की स्थिति में जब तबसे जनसंख्या वृद्धि कई गुनी हो चुकी है बताता है कि संख्या की दृष्टि से वह जो कौन था। आम हालांकि लोगों का कहना है कि बंद होने के पहले भी पुल पर काफी संख्या में लोग रहते थे ,बहुत दिनों के बाद पुल खुला था इस कारण भी संख्या ज्यादा थी। साथ ही छठ पूजा होने के कारण भी लोग चले आए थे।

भ्रष्टाचार के खिलाफ अब निर्णायक लड़ाई का समय आ गया है

भ्रष्टाचार की समृद्ध जमीन को खोखला करने सीवीसी ईडी को तालमेल से पूरी तरह एक्टिव मोड से उसकी जड़े काटने की निर्णायक नीति बनाना ज़रूरी - एडवोकेट किशन भावनानी

गोंदिया - वैश्विक स्तरपर भ्रष्टाचार एक गंभीर समस्या है जिसकी जड़ें काटने के लिए हर देश अपने अपने स्तरपर नीतियां रणनीतियां बनाकर एक्शन मोड में काम कर रहे हैं, परंतु हम अगर भारत में देखें तो पिछले कुछ वर्षों से भ्रष्टाचार रूपी समृद्ध घने पेड़ की एक्शन मोड में अनेक नीतियां रणनीतियां कार्यक्रम बनाकर उसका खाद पानी बंद कर जड़े काटने के लिए काम किए जा रहे हैं, जिसका सबसे अच्छा उदाहरण डीबीटी, डिजिटल इंडिया और अब भारतीय मुद्रा का डिजिटलीकरण लेकर आना याने ई रुपया। मेरा मानना है कि अब तकनीकी अनेक उपाय किए गए हैं अब सीवीसी और ईडी जैसी एजेंसियों को एक रणनीति के तहत शासकीय कर्मचारियों पर टॉप टू बॉटम या बॉटम टू टॉप नीति के तहत उनकी आर्थिक उपलब्धियों स्थितियों पर एक विशेष गुप्त जांच अभियान चलाना जरूरी है कि एक सामान्य बाबू का रहन-सहन इतना उच्चस्तरीय क्यों? उनके बच्चों और अन्य सदस्यों पर इतना खर्चा और सुविधाओं का उपभोग कैसे होता है? एक सभा में माननीय पीएम ने कहा था एक बाबू का बड़ी सिटी में गुप्त या अघोषित महंगा प फलेट कैसे? की जांच होगी इत्यादि बातों को गुप्त जांच कर सबूत जुटाकर उनपर कार्यवाही की जाए तो भ्रष्टाचार की जीरो टॉलरेंस स्थिति आने में देर नहीं लगेगी! चूंकि माननीय पीएम ने सीवीसी के विकसित भारत के लिए भ्रष्टाचार मुक्त भारत के संकल्प पर मनाए जा रहे सतर्कता सप्ताह पर यह संकल्प आज के समय की मांग है, प्रासंगिक है और देशवासियों के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है, इन बातों को साफ-सुथरे शब्दों में कहे हैं, तथा 3 नवंबर 2022 को माननीय पीएम द्वारा सख्त लहजे में भ्रष्टाचार पर जीरो टॉलरेंस की बात कहीं है, इसलिए जरूरी हो गया है कि अब भ्रष्टाचारियों की खतरे की घंटी बजाई जाय। आज हम इस आर्टिकल के माध्यम से चर्चा करेंगे कि भ्रष्टाचार के खिलाफ अब निर्णायक लड़ाई करने का समय आ गया है कि हम सब मिलकर इसे जीरो टॉलरेंस पर पहुंचा दें।

साथियों बात अगर हम भ्रष्टाचारियों पर कार्यवाही की करें तो इसमें बॉटम टू टॉप शासकीय कर्मचारियों को सहभागी होना होगा।हर बाबू से लेकरअधिकारी को अपनी इमानदारी जनता जनार्दन रूपी देवता के सामने रखनी होगी। जिनका वेस्टेड हित है भले ही वे परेशान करें पर अपने पद के प्रति वफादारी नहीं छोड़ना है,क्योंकि पद चेयर हमारी रोजी-रोटी का देवता या साधन है उसके साथ गद्दारी नहीं करनी है, यह सोच रखेंगे तो इसका फल ईश्वर अल्लाह भी हमें किसी न किसी रूप में देगा।

साथियों बात अगर हम दिनांक 3 नवंबर 2022 को माननीय पीएम द्वारा सीवीसी द्वारा आयोजित सतर्कता जागरूकता सप्ताह कार्यक्रम में संबोधन की करें तो पीआईबी के अनुसार उन्होंने भी कहा, भ्रष्टाचार के खिलाफ सरकार जो इच्छा शक्ति दिखा रही है, वैसी ही इच्छाशक्ति सभी विभागों में भी दिखनी आवश्यक है। विकसित भारत के लिए हमें एक ऐसा एडमिनिस्ट्रेटिव इकोसिस्टम विकसित करना है, जो भ्रष्टाचार पर जीरो टॉलरेंस रखता हो। ये आज सरकार की नीति में, सरकार की इच्छाशक्ति में, सरकार के फैसलों में, आप हर जगह पर देखते होंगे। लेकिन यही भाव हमारी प्रशासनिक व्यवस्था के डीएनए में भी मजबूती से बनना चाहिए। एक भावना ये है कि जो भ्रष्ट अफसर होते हैं, उनके खिलाफ कार्रवाई, चाहे वो आपराधिक हो या फिर विभागीय, बरसों तक चलती रहती है। क्या हम भ्रष्टाचार से संबंधित अनुशासनात्मक कार्यवाही को मिशन मोड में, एक अवधि तय करके पूरा कर सकते हैं? क ?योंकि लटकती तलवार उसको भी परेशान करती है। अगर वो निर्दोष है, और इस चक्र में आ गया तो उसको इस बात का बड़ा जीवन भर दुख रहता है कि मैंने प्रमाणिकता से जिंदगी जी और मुझे कैसा फंसा दिया और फिर निर्णय नहीं कर रहे हैं। जिसने बुरा किया है, उसका नुकसान अलग से ही है, लेकिन जिसने नहीं किया वो इस लटकती तलवार के कारण सरकार के लिए और जीवन के लिए हर प्रकार से बोझ बन जाता है। अपने ही साथियों को इस प्रकार से लंबे-लंबे समय तक लटकाए रखने का क्या फायदा है। इस तरह के आरोपों पर जितनी जल्दी फैसला होगा, उतनी ही प्रशासनिक व्यवस्था में पारदर्शिता आएगी, उसकी शक्ति बढ़ेगी। जो आपराधिक मामले हैं, उनमें भी तेजी से कार्रवाई किए जाने, उनकी लगातार मॉनिटरिंग किए जाने की आवश्यकता है। एक और काम जो किया जा सकता है, वो है पेंडिंग भ्रष्टाचार मामलों के आधार पर डिपार्टमेंट्स की रैंकिंग। अब उसमें भी स्वच्छता के लिए जैसे हम कम्-?पीटीशन करते हैं, इसमें भी करें। देखें तो कौन डिपार्टमेंट इसमें बड़ा उदासीन है, क ?या कारण है। और कौन डिपार्टमेंट है जो बहुत तेजी से इस समस्या को गंभीरता से ले करके आगे बढ़ रहा है। और इससे जुड़ी रिपोर्ट्स का मासिक या तिमाही पब्लिकेशन,अलग अलग विभागों को भ्रष्टाचार के खिलाफ चल रहे केसों को तेजी से निपटाने के लिए प्रेरित करेगा। किसी भ्रष्टाचारी को राजनीतिक सामाजिक शरण ना मिले, हर भ्रष्टाचारी समाज द्वारा कठघरे में खड़ा किया जाना चाहिए, ये वातावरण बनाना भी आवश्यक है। हमने देखा है कि जेल की सजा होने के बावजूद भी, भ्रष्टाचार साबित होने के बावजूद भी कई बार भ्रष्टाचारियों का गौरवगान किया जाता है। मैं तो देख रहा हूं, ऐसे ईमानदारी का ठेका ले करके घूमने वाले लोग उनके साथ जा करके ऐसे हाथ पकड़कर फोटो निकालने में शर्म नहीं आती उनको।

मेरा नाजुक सा दिल है

मेरा नाजुक सा दिल है,
कोई पत्थर तो नहीं,

चोट इतनी ना दे मुझे,
कि टुकड़ों में बिखर जाऊं,

ना बना मुझको अनजान पहेली,
कि फिर मैं कभी सुलझ ना पाऊं,

धीरे-धीरे से दर्द दे मुझको,
एक साथ सहने की हिम्मत तो नहीं,

मेरा नाजुक सा दिल है,
कोई पत्थर तो नहीं,

वक्त क्या था जब साथ थे तुम मेरे,
अब घेरे रहते हैं मुझको ये अंधेरे,

कुछ रहम खा कुछ तरस रख मुझ पर,
प्यार ही तो किया था कोई दगा तो नहीं,
मेरा नाजुक सा दिल है,
कोई पत्थर तो नहीं,

गम देते हो क्यों मुझको रूलाकर,
क्या मिलता है मेरा दिल दुखाकर,

क्यों दिया था भरोसा साथ रहने का मुझको,
अब मैं कहां जाऊं ये बता तो सही,
मेरा नाजुक सा दिल है

शार्ट न्यूज

देव दीपावली पर 80 लाख रुपये के फूलों से सजेगा श्री काशी विश्वनाथ का धाम

वाराणसी/लखनऊ। उत्तर प्रदेश में वाराणसी स्थित श्री काशी विश्वनाथ धाम का लोकार्पण होने के बाद वाराणसी में पर्यटकों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि के मद्देनजर देव दीपावली पर काशी आने वाले सैलानियों की संख्या में खासा इजाफा होने की उम्मीद है। इसे देखते हुए योगी सरकार जहां वाराणसी के सभी घाटों को 10 लाख दीयों से रौशन करके नया रिकॉर्ड बनाने जा रही है, वहीं नव्य-भव्य श्री काशी विश्वनाथ धाम को दिव्य और अलौकिक रूप देने के लिए फूलों से सजाने की तैयारी है। सरकार की ओर से इसके लिए 80 लाख रुपये खर्च किये जाएंगे। इसमें पूरे विश्वनाथ धाम परिसर की दो दिन तक सजावट की जाएगी। गौरतलब है कि काशी की देव दीपावली पूरी दुनिया में विख्यात है। कार्तिक माह की पूर्णिमा को मनाये जाने वाले इस महाउत्सव के दौरान बनारस के सभी घाटों को लाखों दीयों से रौशन किया जाता है, जिसे देखने देश-विदेश से बड़ी संख्या में पर्यटक वाराणसी पहुंचते हैं। काशी आने वाले पर्यटक श्रीकाशी विश्वनाथ मंदिर भी जरूर जाते हैं। मुख्यमंत्री की इच्छा के अनुरूप देव दीपावली पर वाराणसी आने वाले पर्यटक काशी विश्वनाथ धाम की अलौकिक छटा के साक्षी बनें। इसके लिए पूरे धाम परिसर को लोकार्पण की तर्ज पर सजाने संवारने का निर्देश दिया गया है।

बागपत की दो चीनी मिलों का नवीन पेराई सत्र शुरू

बागपत। उत्तर प्रदेश के बागपत में भी चीनी मिलों में गन्ना विकास एवं चीनी मिल मंत्री लक्ष्मी नारायण चौधरी की मौजूदगी में शुक्रवार से पेराई सत्र प्रारंभ हो गया है। प्राप्त जानकारी के अनुसार बागपत में स्थित तीन चीनी मिलों में से दो मिलों में आज से यज्ञ के साथ पेराई सत्र शुरू हुआ। बागपत स्थित 'द बागपत कोआपरेटिव शुगर मिल' में पेराई सत्र 2022- 23 का शुभारंभ आज गन्ना मंत्री चौधरी, स्थानीय सांसद डा सत्यपाल सिंह, प्रदेश के वन एवं पर्यावरण राज्य मंत्री केपी मलिक, विधायक योगेश धामा एवं जिलाधिकारी राजकमल यादव की मौजूदगी में किया गया। सबसे पहले गन्ने की ट्राली लाने वाले किसान को अधिकारियों की ओर से पुरस्कार देकर सम्मानित किया गया। इस अवसर पर गन्ना मंत्री चौधरी ने कहा कि 2024 के चुनाव से पहले बागपत शुगर मिल का विस्तार और नवीनीकरण कर दिया जाएगा। उन्होंने कहा कि दो साल के अंदर गन्ने का भुगतान मात्र 10 दिन में हुआ करेगा। उन्होंने बागपत को कृषि और खेती का मंदिर बताया। इस अवसर पर काफी संख्या में किसान व गणमान्य लोग मौजूद रहे। इसके बाद सहकारी चीनी मिल रमाला की भी नवीन सत्र की पेराई शुरू हुयी। गन्ना विकास मंत्री चौधरी ने इस मिल में पेराई सत्र 2022-23 का शुभारंभ किया। उन्होंने भरोसा दिलाया कि चीनी मिलें अपने लक्ष्य के अनुरूप गन्ना पेराई करेंगी और गन्ना किसानों का समय से भुगतान किया जायेगा।

बहराइच : बैराज में मगरमच्छ का शव हुआ बरामद, जांच में जुटा वन विभाग

बहराइच। उत्तर प्रदेश के बहराइच जिले के कतर्नियाघाट वन्यजीव प्रभाग अंतर्गत गिरिजापुरी बैराज में शुक्रवार को एक मगरमच्छ का शव पानी में तैरता मिला। वन विभाग ने मामले की पड़ताल शुरु कर दी है। इसकी सूचना मिलने पर वन विभाग की टीम मौके पर पहुंची और मगरमच्छ के शव को बाहर निकाला। मगरमच्छ की मौत के कारणों का पता अभी नहीं चल सका है। वन विभाग के सूत्रों ने बताया कि कतर्नियाघाट रेंज के गिरिजापुरी बैराज में एक मगरमच्छ का शव पानी में बहता हुआ मिला है। शव जाल में फंसा था। लोगों ने इसकी जानकारी वन विभाग को दी। वन क्षेत्राधिकारी विजय मिश्रा मौके पर पहुंचे। उनकी मौजूदगी में शव को बाहर निकाला गया है। डीएफओ आकाशदीप वधावन ने बताया कि शव का पोस्टमार्टम कराया जा रहा है। इसके बाद मौत के सही कारण का पता चल रहा है। ज्ञात हो कि कतर्नियाघाट वन्यजीव प्रभाग में कई प्रजाति के जलीय जीव पाए जाते हैं। पर्यावरणीय चुनौतियों के कारण अब इन पर संकट गहरा गया है। अभी दो दिन पूर्व एक डॉल्फिन की मौत का मामला भी उजागर हुआ था।

एसटीएफ की छापेमारी के बाद 5 पेट्रोल पंप सील

मेरठ। एसटीएफ की टीम ने मेरठ में नायरा कंपनी के 11 पेट्रोल पंप पर देर शाम छापेमारी की। इस दौरान एसटीएफ की 8 टीम ने 5 पंप की मशीनों में गड़बड़ी पकड़ी है। प्रशासन ने बताया कि शहर में नायरा कंपनी के 11 पेट्रोल पंप है। छापेमारी के दौरान जिन पेट्रोल पंपों के कर्मचारी और मैनेजर ताला लगाकर भाग निकले वहां शुक्रवार को दोबारा जांच की जाएगी। स्पेशल टॉस्क फोर्स (एसटीएफ) मेरठ के अपर पुलिस अधीक्षक बृजेश कुमार सिंह ने बृहस्पतिवार देर शाम 8 टीम लगाकर छापेमारी की। जिससे शहर और देहात के पंपों पर खलबली मच गई। कार्रवाई प्रशासन और आपूर्ति विभाग के अधिकारी भी साथ में पहुंच गये। लेकिन एसटीएफ की टीमें इतनी थी कि, मशीनों की जांच के लिए एक्सपर्ट भी साथ में लिए गये थे। वहीं, मिलावटी तेल को लेकर सैंपल जांच भेजे जाएंगे। अभी तक की जांच में सामने आया है कि घटतौली के साथ मिलावटी तेल भी बेचा जा रहा था। नायरा कंपनी के माधवपुरम, परतापुर, मवाना, सैनी और भटीपुरा स्थित पेट्रोल पंपों पर छापेमारी की गई है। देर रात आपूर्ति विभाग ने इन्हें सील करते हुए पुलिस तैनात कर दी।

अयोध्या की पंचकोसी परिक्रमा कर रहे 30 लाख श्रद्धालु

अयोध्या। अयोध्या की पंचकोसी परिक्रमा गुरुवार की रात आठ बजकर 20 मिनट पर शुरू हुई। सुबह होते ही श्रद्धालुओं का रेला उमड़ पड़ा है। 5 लाख भक्तों से शुरू हुई परिक्रमा में इस समय 30 लाख से ज्यादा भक्त परिक्रमा मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं। भगवान राम के नाम का कीर्तन करते हुए भक्तों का रेला 15 किलोमीटर लंबे आस्था के डगर पर आगे बढ़ रहा है।

मेरठ-दिल्ली एक्सप्रेसवे पर 2 हादसे

गाजियाबाद। मेरठ-दिल्ली एक्सप्रेस-वे पर गुरुवार देर रात भीषण सड़क हादसा हुआ। विपरीत दिशा से जा रही सरकारी एंबुलेंस सामने से आ रहे कैंटर से जा भिड़ी। हादसे में एंबुलेंस सवार एक व्यक्ति की मौत हो गई, जबकि दो घायल हैं। दोनों की हालत भी गंभीर बनी हुई है। उन्हें दिल्ली के हॉस्पिटल के लिए रेफर कर दिया है। एक्सप्रेस-वे पर ही विजयनगर क्षेत्र में एक अन्य हादसे में रेत से ओवरलोडेड ट्रैक्टर-ट्रॉली सुबह पांच बजे पलट गई है। इसमें छह लोग घायल हुए हैं। मसूरी थाने के इंस्पेक्टर रविंद्र चंद्र पंत ने बताया, ये हादसा गांव सिकरोड़ा के नजदीक हुआ है। रात करीब ढाई बजे एक सरकारी एंबुलेंस गाजियाबाद से मेरठ की तरफ जा रही थी। सामने से एक कैंटर आ रहा था, जिसमें कुछ गठरियां लदी थीं। संभवत: दोनों वाहनों की स्पीड ज्यादा रही होगी। आपस में दोनों वाहन टकराए। इसमें कैंटर पलट गया, जबकि एंबुलेंस काफी हद तक डैमेज हो गई। हादसे की सूचना पर हाईवे पेट्रोलिंग जिप्सी और थाने की पुलिस पहुंची। एंबुलेंस और कैंटर सवार घायलों को जिला अस्पताल ले गई। यहां एक व्यक्ति की मौत हो गई। उसकी पहचान राकेश निवासी रुड़की के रूप में हुई है। बिजनौर निवासी विनीत समेत दो लोग घायल हुए हैं। दोनों घायलों को दिल्ली के लिए रेफर कर दिया है।

बस्ती में ट्रक ने तीन को रौंदा, मौके पर मौत

हरैया। बस्ती जिले में देर रात एक तेज रफ्तार ट्रक ने बाइक को टक्कर मार दी। बाइक पर सवार तीन दोस्तों की मौके पर ही मौत हो गई। तीनों दोस्त अयोध्या पंचकोसी परिक्रमा करने के लिए जा रहे थे। घटना सूचना पर मौके पर पहुंची पुलिस मामले की जांच पड़ताल में जुट गई है। जानकारी के अनुसार कप्तानगंज थाना क्षेत्र के हंसउर गांव निवासी रंजीत, कप्तानगंज थाना बरहपुर गांव निवासी अंकित उर्फ शिवकांत मिश्रा और उसी गांव के दीपक कुमार की मौके पर ही मौत हो गई। टक्कर लगने के बाद बाइक ट्रक के अगले हिस्से में फंस गई, 500 मी. तक ट्रक उसे घसीटता हुआ चला गया। हादसे के वक्त ट्रक की रफ्तार काफी तेज थी। ट्रक में फंसी बाइक को निकालने में पुलिसकर्मियों को काफी मशक्कत करनी पड़ी। चालक ट्रक को छोड़कर फरार हो गया है। पुलिस के मुताबिक तीनों दोस्त अयोध्या में चल रही पंचकोसी परिक्रमा करने के लिए जा रहे थे। घर से चलने के बाद तीनों बस्ती-अयोध्या हाईवे पर स्थित गजानन ढाबे के पास पहुंचे थे कि पीछे से आ रहे एक अनियंत्रित ट्रक ने टक्कर मार दी।

भाजपा के विक्रम सैनी की विधायकी गई

सजा मिलने के बाद सदस्यता रद्द

मुजफ्फरनगर। आजम खान के बाद यूपी के एक और विधायक की सदस्यता रद्द कर दी गई है। मुजफ्फरनगर से भाजपा के खतौली विधायक विक्रम सैनी की भी सदस्यता कर दी गई। पिछले दिनों कोर्ट ने विधायक को दो-दो साल की सजा सुनाई थी, हालांकि विधायक को तुरंत जमानत मिल गई थी। शुक्रवार को उनकी विधानसभा की सदस्यता रद्द करने की कार्यवाई की गई। जल्द ही विक्रम सैनी की सीट को विधानसभा सचिवालय रिक्त घोषित करेगा। इससे पहले सपा के पूर्व मंत्री और कद्दावर नेता आजम खान को भी इसी तरह के मामले में सदस्यता समाप्त की गई थी। अब यहां उपचुनाव होना तय माना जा रहा है।

कवाल के बवाल में दोषी भाजपा विधायक को मिली थी दो-दो साल की सजा

मुजफ्फरनगर दंगे के दौरान कवाल में सचिन और गौरव की हत्या के अगले दिन दो पक्षों के बीच हुए बवाल में नामजद खतौली विधायक विक्रम सैनी समेत 12 लोगों को अदालत ने दोषी करार दिया था।

एडीजे कोर्ट ने इन सभी को दो-दो साल कारावास एवं 10-10 हजार रुपये जुर्माने की सजा सुनाई थी। जमानत पर सुनवाई करते हुए कोर्ट ने सभी को 25 25 हजार रुपये के बंधपत्र पर जमानत दे दी थी। साक्ष्य के अभाव में 15 आरोपियों को बरी कर दिया गया है जबकि एक आरोपी की मौत हो चुकी है। मुकदमे की सुनवाई अपर जिला एवं सत्र न्यायाधीश संख्या-4 गोपाल उपाध्याय की कोर्ट में हुई। अधिवक्ता के अनुसार कोर्ट ने दोनों पक्षों की बहस सुनने के बाद विधायक विक्रम सैनी सहित 12 आरोपियों को विभिन्न आरोपों में दोषी ठहराया, जबकि इन सभी को धारा 307 के आरोपों से बरी कर दिया। कोर्ट ने विधायक विक्रम सैनी समेत 12 लोगों को दो-दो साल की कारवास एवं 10 10 हजार का अर्थदंड भी लगाया है। अस मामले में 15 आरोपियों को साक्ष्यों के अभाव में बरी कर दिया गया। विधायक विक्रम सिंह के अधिवक्ता भरतवीर अहलावत ने बताया कि उनकी ओर से कोर्ट में जमानत अर्जी दाखिल की गई। जिस पर सुनवाई करते हुए कोर्ट ने उन्हें जमानत प्रदान कर दी थी

ये है पूरा मामला

27 अगस्त 2013 को कवाल कांड के बाद 28 अगस्त की शाम कवाल में तोड़फोड़ एवं मारपीट हुई थी। बाद में 29 अगस्त को दोनों पक्षों में झगड़ा हो गया था। इस मामले में जानसठ पुलिस ने विधायक विक्रम सैनी समेत 28 लोगों को आरोपी बनाकर विभिन्न धाराओं में मुकदमा दर्ज किया था। इनमें से एक आरोपी की मृत्यु हो चुकी है।

जयंत चौधरी ने विक्रम सैनी के खिलाफ कार्रवाई को लिखा था लेटर

राष्ट्रीय लोकदल के अध्यक्ष व सांसद जयंत चौधरी ने खतौली विधायक की सदस्यता रद्द करने को लेकर विधानसभा अध्यक्ष सतीश महाना को पत्र लिख लिखा था। जयंत ने कहा था कि न्याय की लेखनी का रंग एक-सा होता है, भिन्न-भिन्न नहीं। उन्होंने कहा है कि स्पेशल एमपीएमएलए कोर्ट में हेट स्पीच मामले में सपा नेता मो. आजम खां की सदस्यता विधानसभा अध्यक्ष ने तत्काल प्रभाव से रद्द कर दी। जबकि एक अन्य मामले में इसी कोर्ट ने 11 अक्तूबर को विक्रम सैनी को भी दो साल की सजा सुनाई लेकिन उनके खिलाफ कोई निर्णय नहीं लिया गया।

यूपी के सात शहरों में बनेंगे टेक्सटाइल पार्क

कानपुर। बीआईसी और नेशनल टेक्सटाइल कॉरपोरेशन ने कानपुर समेत यूपी के सात शहरों में टेक्सटाइल पार्क बनाने का निर्णय लिया है। हालांकि इसके लिए प्रदेश सरकार के सामने खुला ऑफर रखा है कि बंद मिलों की निष्प्रयोज्य जमीन फ्रीहोल्ड करके ले ली जाए और बदले में शहर के बाहर जमीन दे दी जाए। इस मुद्दे पर शुक्रवार को लखनऊ में अपर मुख्य सचिव औद्योगिक विकास एवं अवस्थापना की अध्यक्षता में बैठक होगी। सबसे पहले मिलें बंद हो जाने से खाली हो गई जमीनों का भू-उपयोग बदलने पर चर्चा होगी। हाथरस, सहारनपुर, रायबरेली, लखनऊ, मऊ नैनी व कानपुर में अकेले एनटीसी की ही 375 एकड़ जमीन निष्प्रयोज्य हो चुकीं हैं।

इसमें कानपुर की 5 मिलों की 150 एकड़ जमीनें हैं। इन सभी का कई वर्षों से मास्टर प्लान में लैंड यूज औद्योगिक है। इसे जरूरत के हिसाब से आवासीय, कॉमर्शियल संस्थागत और ऑफिस में तब्दील किए जाने का प्रस्ताव किया गया है। एनटीसी ने प्रदेश सरकार को जो पत्र भेजा है उसमें कहा है कि शासन स्तर पर लैंड यूज बदला जाए। बीआईसी की कानपुर में 27 संपत्तियां हैं जिनका लैंड यूज बदला जा सकता है। ये सभी जमीनें नजूल की हैं जो फैक्टरी, दफ्तर और बंगला बनाने के लिए लीज पर दी गईं थीं। इसमें लाल इमली की जमीन भी शामिल है। एनटीसी ने 35 वर्ष बाद कानपुर को एक बार फिर से टेक्सटाइल नगरी के रूप में विकसित करने का प्रस्ताव रखा है। टेक्सटाइल पार्क को शहर के बाहर जमीन मिली तो कई फैक्टरियां लगाई जा सकती हैं। अपर मुख्य सचिव ने बैठक में कमिश्नर, डीएम, केडीए उपाध्यक्ष, टाउन प्लानर, मुख्य ग्राम्य एवं नगर नियोजक के अलावा उद्योग व औद्योगिक विकास विभाग के अफसरों को बुलाया है।

देश के विकास में कृषि एवं पशुपालन का अहम योगदान : राज्यपाल

लखनऊ। उत्तर प्रदेश की राज्यपाल एवं कुलाधिपति आनंदीबेन पटेल ने कहा कि विशाल जनसंख्या वाले हमारे देश के विकास में कृषि एवं पशुपालन का महत्वपूर्ण योगदान है, इसलिये एक-दूसरे के पूरक रहने वाले ये क्षेत्र राष्ट्र की आजीविका, खाद्य-सुरक्षा एवं आर्थिक अर्जन को समृद्ध करते हैं।

राज्यपाल ने शुक्रवार को यहां राजभवन से दीनदयाल उपाध्याय पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय एवं गो अनुसंधान संस्थान, मथुरा द्वारा आयोजित 'इण्डियन पॉल्ट्री सांइस एसोसिएशन' के तीन दिवसीय 37वें सम्मेलन एवं राष्ट्रीय संगोष्ठी का वर्चुअल उद्घाटन किया। इस अवसर पर सम्मेलन को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि अधिक आबादी वाले देश भारत में विकास के क्रम में कृषि एवं पशुपालन को साथ लेकर चलना समय की मांग है। उन्होंने निरन्तर प्रगति कर रहे कुक्कुट व्यवसाय का जिक्र करते हुए कहा कि ये कृषि के सर्वाधिक लाभकारी उद्योगों में से एक है और इस व्यवसाय में आम आदमी की रूचि भी बढ़ रही है। उन्होंने इस व्यवसाय को किसानों की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने वाला तथा कुपोषण से सम्बन्धित समस्याओं से भी निजात दिलाने में सक्षम बताया। उन्होंने कहा कि 'बैकयार्ड कुक्कुट पालन' भूमिहीन, लघु एवं सीमान्त कृषकों, पशुपालकों, ग्रामीणों, महिलाओं एवं युवाओं को आर्थिक आधार प्रदान करने के साथ-साथ उचित पोषण का भी मजबूत आधार है।

राज्यपाल ने इस दिशा में किये जा रहे विश्वविद्यालय के उल्लेखनीय कार्यों की सराहना भी की।

टोल देने को लेकर नेशनल हाईवे पर बवाल

टोल कर्मी और विधायक समर्थकों में मारपीट, गाड़ी भी तोड़ीं

मसौली। यूपी के बहराइच-बाराबंकी नेशनल हाईवे के शहावपुर टोल प्लाजा पर टोल देने को लेकर अपना दल के नानापारा विधायक के समर्थकों के साथ टोल कर्मियों का जमकर विवाद हुआ। इस दौरान जमकर मारपीट हुई जिसमें कई वाहनों के शीशे टूट गए। टोल कर्मियों पर कार्रवाई करने की मांग को लेकर समर्थक हाईवे पर धरने पर बैठ गए।

विधायक भी वहीं मौजूद रहे। जिसके कारण पूरे नेशनल हाईवे का यातायात ठप हो गया। जाम की सूचना पर पुलिस मौके पर पहुंची तो नजारा देख दंग रह गई। पुलिस की काफी मान मनौव्वल व कार्रवाई के आश्वासन पर विधायक व समर्थकों ने धरना समाप्त किया। पूरी घटना को लेकर विधायक द्वारा मुकदमा लिखे जाने को लेकर तहरीर भी दी गई है। मारपीट व हंगामे के कारण करीब एक घंटे तक नेशनल हाईवे का यातायात बाधित रहा।

समर्थकों धरने पर बैठे

मारपीट की घटना को लेकर आहत विधायक समर्थक के साथ नेशनल हाईवे पर ही गाड़ी खड़ी कर धरने पर बैठ गए। इस दौरान विधायक भी वहीं मौजूद रहे। जिसके कारण नेशनल हाईवे का यातायात पूरी तरह ठप हो गया। टोल प्लाजा के दोनों ओर वाहनों की लंबी-लंबी कतारें लगने लगी। जाम लंबा होने पर सूचना पुलिस तक पहुंची। पुलिस अधिकारी मौके पर पहुंचे और विधायक और उनके समर्थकों से बातचीत की। पुलिस अधिकारियों ने विधायक से कार्रवाई करने का आश्वासन दिया। काफी मान मनोबल के बाद विधायक और उनके समर्थकों ने नेशनल हाईवे पर दिया जा रहा धरना समाप्त किया।

इस मामले को लेकर विधायक और समर्थकों ने मसौली थाने पहुंचकर टोल कर्मियों के खिलाफ अभद्रता मारपीट व तोड़फोड़ करने को लेकर तहरीर दी है।

लखनऊ : घर से पड़ोसी के खेत पर किशोरी की गला रेतकर हत्या

पुलिस बोली- प्रेम प्रसंग में वारदात

एजेंसी

काकोरी (लखनऊ)। लखनऊ के दुबग्गा में शुक्रवार की सुबह सनसनीखेज वारदात को अंजाम देते हुए एक किशोरी की गला रेतकर हत्या कर दी गई। अपने घर से शौच के लिए निकली किशोरी का शव पड़ोसी के खेत पर झाड़ियों के बीच मिला। घटना की सूचना पाकर पुलिस के आलाधिकारी भी मौके पर पहुंचे और जांच में जुट गए है। डीसीपी ने प्रेम प्रसंग के चलते हत्या की बात कही है।

जेहटा के मौरा खेडा गांव में शुक्रवार की सुबह करीब साढ़े छह बजे नाबालिग कविता रावत (17) शौच के लिए घर से निकली थी। सुबह घना कोहरा था। काफी देर तक घर वापस न आने पर परिजनों ने उसकी तलाश की तो पड़ोसी छोटेलाल के खेत मे उसका खून से लथपथ शव पड़ा मिला। शव देखते ही कोहराम मच गया।

परिजनों ने पुलिस को सूचना दी। घटना की सूचना पाकर मौके पर डीसीपी राहुल राज के साथ भाजपा जिलाध्यक्ष श्रीकृष्ण लोधी मौके पर पहुंचे। डीसीपी राहुल राज ने बताया कि प्रेम प्रसंग के चलते नाबालिग की चाकू से गला रेतकर हत्या की गई है। मौके से हत्या में इस्तेमाल चाकू भी बरामद कर लिया गया है। आरोपियों की तलाश की जा रही है।

रोनिल हत्याकांड में चौथे दिन भी पुलिस के हाथ खाली

कानपुर। कानपुर के छात्र रोनिल हत्याकांड का चार दिन बाद भी पुलिस खुलासा नहीं कर सकी है। पुलिस की जांच स्कूल में पढ़ने वाले रोनिल के नजदीकी, दोस्तों और गर्लफ्रेंड के बीच उलझ गई है। पुलिस हत्यारे तक नहीं पहुंच पा रही है। वहीं, दूसरी तरफ न्याय के लिए परिजनों के साथ हजारों लोग रोजाना सड़क पर कैंडल मार्च और प्रदर्शन कर रहे हैं। परिजनों का कहना है कि अगर पुलिस ने जल्द खुलासा नहीं किया तो न्याय को लेकर पूरे शहर में मुहिम शुरू कर दी जाएगी। इंटर के छात्र रोनिल हत्याकांड में पुलिस की जांच में अब तक सामने आया है कि उसकी हत्या साथ के ही छात्रों व दोस्तों के शामिल होने की पूरी आशंका है।

दोस्त की बीवी से तमंचे की नोक पर रेप

एटा। यूपी के एटा में एक शख्स की अपने दोस्त की बीवी पर लम्बे समय से बुरी नजर थी। आरोप है कि कुछ महीने पहले एक दिन वह शख्स जबरन घर में घुस आया और तमंचा दिखाकर उसके साथ रेप किया। इसके बाद वह डरा-धमकाकर लगातार संबंध बनाता रहा। महिला प्रेग्नेंट हो गई तो उसने उसका अबॉर्शन भी करा दिया। काफी समय तक महिला यह सब बर्दाश्त करती रही लेकिन बुधवार को उसका सब्र जवाब दे गया तो थाने पहुंचकर उसने सारा राज खोल दिया। महिला की शिकायत पर पुलिस ने आरोपी के खिलाफ केस दर्ज कर लिया है। यह घटना एटा के मिरहची थाना क्षेत्र की है। महिला के आरोपों के मुताबिक आरोपी वीरेश निवासी इखोना थाना ढोलना कासगंज कुछ महीने पहले उसके घर में जबरन घुस आया। उसने तमंचा दिखाकर उसके साथ रेप किया। इसके बाद भी डरा-धमकाकर लगातार अवैध संबंध बनाता रहा। जिससे वह गर्भवती हो गई। इसका पता वीरेश को चला तो उसने महिला का गर्भपात करा दिया। वीरेश की हरकतें लगातार जारी रहीं और धमकी के चलते पीड़िता डरी रही। लेकिन बुधवार को पीड़िता का सब्र जवाब दे गया। उसने थाना मिरहची जाकर पुलिस को पूरे मामले की जानकारी दी। पीड़िता की तहरीर पर पुलिस ने रिपोर्ट दर्ज कर जांच शुरू कर दी है। एसएचओ मिरहची छतरपाल सिंह का कहना है कि आरोपी और पीड़िता के पति किसी अन्य राज्य में काम करते हैं। आरोपी का पीड़िता के घर पर आना-जाना था। पीड़िता के अनुसार आरोपी ने तमंचा दिखाकर दुष्कर्म किया और बाद में गर्भपात भी करा दिया था।

पत्नी समेत जेल में बंद मेडिकल माफिया पर पुलिस का बड़ा ऐक्शन

यूपी पुलिस ने जब्त की 100 करोड़ की प्रापर्टी

गोरखपुर। यूपी पुलिस ने मेडिकल माफिया और गैंगस्टर एक्ट के आरोपित डा. अभिषेक यादव के खिलाफ बड़ी कार्रवाई की है। शुक्रवार को डाक्टर के साथ-साथ उसकी पत्नी और बहन की कुल करीब 100 करोड़ की संपत्ति को जब्त कर लिया गया। पुलिस और प्रशासन की टीम ने कोतवाली क्षेत्र के दुर्गाबाड़ी रोड पर स्थित राज नर्सिंग होम को कुर्क करते हुए अपना ताला लगा दिया।

अलग-अलग स्थानों पर स्थित डा.अभिषेक और उससे जुड़े लोगों की कई अन्य सम्पत्तियों को भी जब्त किया गया है।

तिवारीपुर थाना पुलिस की रिपोर्ट पर जिलाधिकारी कृष्णा करुणेश ने आरोपितों की चिन्हित हुई भूमि, भवन, नर्सिंग कालेज व आठ वाहनों को कुर्क करने का आदेश दिया है।अलग-अलग बैंकों में स्थित आरोपितों के 15 से अधिक बैंक खातों के संचालन पर भी जिलाधिकारी ने रोक लगा दी है। बिना मान्यता के नर्सिंग कालेज में छात्रों का प्रवेश लेकर जालसाजी करने का आरोपित डा. अभिषेक उसकी पत्नी समेत पांच आरोपित इस समय जेल में हैं। पिपराइच के तुर्रा बाजार स्थित राज नर्सिंग एंड पैरामेडिकल कालेज के संचालक डा. अभिषेक यादव ने कूटरचित दस्तावेज कर शासन से मान्यता मिलने की जानकारी देकर नर्सिंग कालेज में छात्र-छात्राओं का प्रवेश ले लिया था। शिकायत पर शासन के संयुक्त सचिव अनिल कुमार सिंह ने आठ जनवरी 2022 को कोतवाली थाने में राज नर्सिंग कालेज के संचालक पर कूटरचित दस्तावेज तैयार कर जालसाजी करने का मुकदमा दर्ज कराया था।जालसाजी की जानकारी होने पर ठगी के शिकार छात्रों के घरवालों ने भी तहरीर दी थी।कालेज पर ताला लगाने के साथ ही अधिकारियों ने आरोपितों के खिलाफ पिपराइच थाने में भी मुकदमा दर्ज कराया।

मरीजों के इलाज में लापरवाही बरतने पर होगी कार्रवाई

लखनऊ। लखनऊ की कमिश्नर रोशन जैकब शुक्रवार को अचानक से केजीएमयू पहुंची। चिकित्सा विश्वविद्यालय के गांधी वार्ड में मरीजों से मिलकर उनका हालचाल जाना। डॉक्टरों के राउंड लेने और इलाज के बारे में भी जानकारी हासिल की। इसके बाद कमिश्नर ने वार्ड के ड्रग स्टोर और एचआरएफ सेंटर का भी निरीक्षण किया। डॉक्टरों को डेंगू के मरीजों की भर्ती के लिए अलग से वार्ड बनाने का निर्देश दिया। इसके साथ ही मरीजों की इलाज में किसी भी प्रकार की लापरवाही न बरतने की हिदायत भी दी। शुक्रवार को लखनऊ मंडलायुक्त रोशन जैकब ने केजीएमयू का रुख किया। वह सीधे चिकित्सा विश्वविद्यालय के गांधी वार्ड पहुंची।

गाजियाबाद पुलिस का यति नरसिंहानंद को नोटिस

बिना इजाजत 'धर्म संसद' का आयोजन ना करें

नई दिल्ली। उत्तर प्रदेश पुलिस ने गाजियाबाद के डासना देवी मंदिर के महंत यति नरसिंहानंद सरस्वती को नोटिस जारी कर धर्म संसद और उसकी तैयारी के लिए कोई बैठक आयोजित नहीं करने का निर्देश दिया है। एक वरिष्ठ अधिकारी ने बताया कि जिसके लिए जिला प्रशासन से अनुमति नहीं ली गई है।

अपने भड़काऊ बयानों से अक्सर विवाद पैदा करने वाले नरसिंहानंद ने 17 दिसंबर से शुरू हो रहे तीन दिवसीय धर्म संसद को भाजपा के पूर्व सांसद बैकुंठ लाल शर्मा प्रेम की जयंती कार्यक्रम बताया है।

तीन दिवसीय आयोजन की योजना तैयार करने के लिए छह दिसंबर को तैयारी बैठक बुलाई गई है।

एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी ने बताया कि जिला प्रशासन की ओर से मसूरी पुलिस ने गुरुवार को यति नरसिंहानंद को नोटिस जारी किया गया है। पूर्वी दिल्ली से भाजपा के पूर्व सांसद बैकुंठ लाल शर्मा प्रेम की जयंती के अवसर पर 17 दिसंबर से प्रस्तावित तीन दिवसीय धर्म संसद कार्यक्रम की योजना तैयार करने के लिए छह दिसंबर को तैयारी बैठक बुलाई गई है।

डासना मंदिर के महंत ने एक प्रेस विज्ञप्ति में कहा था कि धर्म संसद मंदिर परिसर के अंदर आयोजित की जाएगी, इसलिए किसी अनुमति की आवश्यकता नहीं है। यह पहली बार आयोजित नहीं हो रही है। हम इसे किसी भी कीमत पर आयोजित करेंगे, अगर पुलिस और प्रशासन बाधा उत्पन्न करता है, तो संत अपना विरोध दर्ज कराएंगे।

पुलिस अधीक्षक (ग्रामीण) इराज राजा ने कहा, बिना इजाजत के पुलिस तीन दिवसीय धर्म संसद की अनुमति नहीं देगी, जिसमें सैकड़ों संत यहां पहुंचेंगे और उन्हें सुरक्षा प्रदान करना एक कठिन काम होगा। इसके अलावा, नगर निगम चुनावों के मद्देनजर जिले में धारा 144 भी लागू है। एसपी ने कहा कि किसी भी अप्रिय घटना से बचने के लिए सभी एहतियाती कदम उठाए जाएंगे।

स्कूल शुरू होने के 15 मिनट पहले और छुट्टी के 30 मिनट बाद तक रुकेंगे शिक्षक

लखनऊ। उत्तर प्रदेश के परिषदीय विद्यालयों में पढ़ाई के लिये निर्धारित अवधि में कोई शिक्षक स्कूल से बाहर नहीं रहेगा। शिक्षक, स्कूल शुरु होने से 15 मिनट पहले विद्यालयद पहुंचेंगे और छुट्टी होने के बाद 30 मिनट तक स्कूल में उपस्थित रहकर पंजिका तथा अन्य अभिलेख अपडेट करेंगे और अगले दिन की पढ़ाई की रूपरेखा तैयार करके जायेंगे। राज्य की योगी सरकार के निर्देश पर सभी बेसिक शिक्षा अधिकारियों को ये निर्देश जारी किये गये हैं। महानिदेशक, स्कूल शिक्षा विजय किरण आनंद की ओर से जारी दिशा-निर्देशों में साप्ताहिक कैलेंडर का शत-प्रतिशत अनुपालन सुनिश्चित करने को कहा गया है। यदि शैक्षिक कैलेंडर में निर्धारित समय सारिणी का अनुपालन सुनिश्चित नहीं किया जा सका है तो इसकी प्रतिपूर्ति के लिये अतिरिक्त क्लास की व्यवस्था की जाएगी। इसके अलावा स्कूल में पढ़ाई की अवधि में रैली, प्रभात फेरी, मानव श्रृंखला और गोष्ठी का आयोजन नहीं होगा।

महानिदेशक के दिशा-निर्देशों के मुताबिक 'टाइम एंड मोशन स्टडी' के आधार पर विद्यालयों में शैक्षणिक कार्यों के लिए समय अवधि एवं कार्य निर्धारण को लेकर की जा रही कार्यवाही संतोषजनक नहीं है। ऐसे में सभी बेसिक शिक्षा अधिकारी अपने जनपद में इनका अनुपालन सुनिश्चित कराएं।

आनंद ने प्रदेश के सभी जिला बेसिक शिक्षा अधिकारियों से स्कूलों में पढ़ाई के घंटे समेत सभी शैक्षणिक कार्यों के लिए निर्धारित समय-सारिणी के पालन के संबंध में 20 नवंबर तक रिपोर्ट मांगी है।

शार्ट न्यूज

टाटा पावर-डीडीएल का ग्रीन वॉरियर्स अभियान

नयी दिल्ली। जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वॉर्मिंग की चिंताओं के बीच बिजली वितरण कंपनी टाटा पावर-दिल्ली डिस्ट्रीब्यूशन लिमिटेड (डीडीएल) 'ग्रीन वॉरियर्स' अभियान के तहत कक्षा 3-10 के छात्रों को हरित योद्धा बनने का मौका प्रदान कर रही है। इस अभियान के तहत छात्र पर्यावरण को बचाने, ग्लोबल वॉर्मिंग घटाने या नियंत्रित करने और हरा-भरा भविष्य बनाने के लिए अपने नए विचारों को एक मिनट की वीडियो में भेज सकते हैं। छात्र अपनी वीडियो में कविता, डांस, ऐक्ट आदि भेज सकते हैं। इसमें उच्च 10 छात्रों को मिलेगा 50,000 रुपये (प्रत्येक विजेता छात्र के लिए अधिकतम 10,000 रुपये) के मूल्य के इनाम जीतने का मौका। छात्र अपनी वीडियो वॉट्सऐप के जरिए +91 9871655629 पर भेज सकते हैं।

विदेशी मुद्रा भंडार 6.6 अरब डॉलर बढ़कर 531.1 अरब डॉलर पर

मुंबई। विदेशी मुद्रा परिसंपत्ति, स्वर्ण, विशेष आहरण अधिकार (एसडीआर) और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) के पास आरक्षित निधि के बढ़ने से देश का विदेशी मुद्रा भंडार 28 अक्टूबर को समाप्त सप्ताह में 6.6 अरब डॉलर बढ़कर 531.1 अरब डॉलर पर पहुंच गया जबकि इसके पिछले सप्ताह यह 3.85 अरब डॉलर कम होकर 524.5 अरब डॉलर रहा गया था। रिजर्व बैंक की ओर से शुक्रवार को जारी साप्ताहिक आंकड़े के अनुसार, 28 अक्टूबर को समाप्त सप्ताह में विदेशी मुद्रा भंडार के सबसे बड़े घटक विदेशी मुद्रा परिसंपत्ति 5.8 अरब डॉलर की बढ़त लेकर 470.85 अरब डॉलर हो गयी। इसी तरह इस अवधि में स्वर्ण भंडार में 55.6 करोड़ डॉलर की बढ़ोतरी हुई और यह बढ़कर 37.76 अरब डॉलर हो गया।आलोच्य सप्ताह एसडीआर में 18.5 करोड़ डॉलर की वृद्धि हुई और यह बढ़कर 17.63 अरब डॉलर पर पहुंच गया। इस अवधि में आईएमएफ के पास आरक्षित निधि 4.8 करोड़ डॉलर बढ़कर 4.85 अरब डॉलर पर पहुंच गई।

रुपये में 53 पैसे की तेजी

मुंबई। दुनिया की प्रमुख मुद्राओं के मुकाबले डॉलर के कमजोर पड़ने के साथ ही घरेलू शेयर बाजार में तेजी लौटने की बदौलत आज अंतरबैंकिंग मुद्रा बाजार में रुपया 53 पैसे मजबूत होकर 82.35 रुपये प्रति डॉलर पर पहुंच गया। वहीं, पिछले कारोबारी दिवस रुपया आठ पैसे फिसलकर 82.88 रुपये प्रति डॉलर रहा था। शुरुआती कारोबार में रुपया तीन पैसे सुधरकर 82.85 रुपये प्रति डॉलर पर खुला और बिकवाली की बदौलत 82.35 रुपये प्रति डॉलर के उच्चतम स्तर पर पहुंच गया और अंत में इसी स्तर पर बंद भी हुआ। हालांकि लिवाली के दबाव में यह 82.85 रुपये प्रति डॉलर के निचले स्तर तक लुढ़क गया।

पंजाब में होगी डबलट्री बाई हिल्टन ब्रांड के होटल की शुरुआत

अमृतसर। अमेरिका की बहुराष्ट्रीय होटल कंपनी हिल्टन ने अमृतसर में होटल खोलने को लेकर शुक्रवार को वंडरग्रेन एक्सपोर्ट्स प्राइवेट लिमिटेड के साथ समझौता किया जिसमें डबलट्री बाई हिल्टन को वर्ष 2026 तक शुरू करने की योजना है। इस होटल की शुरुआत से पंजाब में हिल्टन का पदार्पण हो रहा है और यह क्षेत्र में मेहमानों एवं सैलानियों शानदार सेवाएं प्रदान करेगा। यह होटल यहां के विश्व प्रसिद्ध स्वर्ण मंदिर से थोड़ी ही दूरी पर रंजीत एवेन्यू में स्थित होगा। देश में हिल्टन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष और राष्ट्र प्रमुख नवजीत अहलूवालिया ने कहा, इस नवीनतम समझौते के साथ हम अगले पांच वर्षों में देश में अपनी उपस्थिति को दोगुना करने के लिए अग्रसर हैं, क्योंकि हम सही ब्रांड को सही स्थान पर पेश करने के लिए सही भागीदारों के साथ काम करने पर अपना ध्यान केंद्रित कर रहे हैं।

गोयल से मिले ताइवान के आर्थिक मामलों के मंत्री

नयी दिल्ली। भारत की यात्रा पर आए ताइवान के आर्थिक मामलों के उप-मंत्री चेर्न-ची चेन ने शुक्रवार को राजधानी में केंद्रीय वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री पीयूष गोयल से मुलाकात की। गोयल के पास कपड़ा, उपभोक्ता मामले, खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण विभाग की भी जिम्मेदारी है। वाणिज्य एवं उद्योग विभाग ने ट्विटर पर दोनों नेताओं की अकेले और आधिकारिक प्रतिनिधिमंडल स्तर की बातचीत की फोटो के साथ जारी एक बयान में कहा है श्री गोयल और श्री चेन ने 'आपसी हित के कई क्षेत्रों में सहयोग बढ़ाने पर चर्चा की।' बयान के अनुसार दोनों पक्षों ने भारत और ताइवान के बीच द्विपक्षीय व्यापार और निवेश को और बढ़ावा देने के तरीकों पर भी चर्चा की है। चेन अपनी इस यात्रा के दौरान यहां आयोजित होने वाले भारत-ताइवान औद्योगिक सहयोग शिखर सम्मेलन में हिस्सा लेंगे। उनकी इस यात्रा से दोनों देशों के बीच बढ़ावा मिलने की उम्मीद।

अटल इनोवेशन मिशन की 75 महिला उद्यमियों पर कॉफी टेबल बुक

नयी दिल्ली। नीति आयोग के अंतर्गत अटल इनोवेशन मिशन (एआईएम) ने देश की 75 सफल महिला उद्यमियों की 'इनोवेशन फॉर यू' कॉफी टेबल बुक का चौथा संस्करण प्रकाशित किया है। नीति आयोग की एक विज्ञप्ति के मुताबिक 75 महिला उद्यमियों को एआईएम, और नीति आयोग के अटल इनक्यूबेशन सेंटर (एआईसी) की ओर से मदद की जा रही है। पुस्तक का विमोचन करते हुए मिशन निदेशक अटल इनोवेशन मिशन डॉ. चिंतन वैष्णव ने कहा कि 'नारी तू नारायणी' हमारे देश की परंपरा रही है। हम इस पुस्तक को उन सभी महिलाओं को समर्पित करते हैं जो राष्ट्र की भावी नेता बनने की इच्छा रखती हैं। आयोग की एक विज्ञप्ति के अनुसार 'इनोवेशन्स फॉर यू' पुस्तक अटल इनक्यूबेशन सेंटर, अटल कम्युनिटी इनोवेशन सेंटर और अटल न्यू इंडिया चैलेंज, अटल इनोवेशन मिशन के तहत तीन प्रमुख कार्यक्रमों के माध्यम से समर्थित स्टार्ट-अप की सफलता की कहानियों को दर्शाती है। पहला संस्करण स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र, दूसरा कृषि और संबद्ध क्षेत्र और तीसरा परिवहन और गतिशीलता पर केंद्रित था। एआईएम द्वारा समर्थित 2900 से अधिक स्टार्टअप में से 850 से अधिक का नेतृत्व महिलाएं कर रही हैं। डॉ. वैष्णव ने कहा, आने वाले दशक में भारत में कामकाजी उम्र की आबादी दुनिया में सबसे बड़ी होगी और कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी भारत के आर्थिक और सामाजिक विकास को बदलने में एक अभिन्न भूमिका निभाएगी।

पेट्रोल और डीजल के दाम में टिकाव

नयी दिल्ली। अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमत 90 डॉलर प्रति बैरल के पार पहुंचने के बावजूद देश में पेट्रोल और डीजल के दाम में शुक्रवार को भी कोई बदलाव नहीं हुआ। अंतरराष्ट्रीय बाजार में लंदन ब्रेंट क्रूड आज 2.32 प्रतिशत उबलकर 96.87 डॉलर प्रति बैरल और अमेरिकी क्रूड 2.69 प्रतिशत की तेजी लेकर 90.54 डॉलर प्रति बैरल हो गया। घरेलू स्तर पर तेल विपणन कंपनी भारत पेट्रोलियम के अनुसार, पेट्रोल और डीजल की कीमतों में आज भी टिकाव रहा। दिल्ली में पेट्रोल 96.72 रुपये प्रति लीटर और डीजल 89.62 रुपये प्रति लीटर पर स्थिर है। देश में चार महीने से अधिक समय से ईंधन की कीमतों में कोई बदलाव नहीं हुआ है। मुंबई में पेट्रोल के दाम 106.31 रुपये प्रति लीटर और और डीजल की कीमत 94.27 रुपये प्रति लीटर है। पेट्रोल और डीजल की कीमतें मूल्य वर्धित कर (वैट) और माल ढुलाई शुल्क के आधार पर सभी राज्यों में अलग-अलग हैं। पेट्रोल-डीजल के मूल्यों की प्रतिदिन समीक्षा की जाती है।

एसटी ने 'डीएक्सकोड' का दूसरा संस्करण लांच किया

शीर्ष 5 फाइनलिस्ट टीमों के प्रत्येक सदस्य को एसटी ज्वॉइन करने के लिए जॉब ऑफर मिलेगा, कॉलेज और यूनिवर्सिटी के छात्रों के लिए भारत का सबसे बड़ा हैकाथॅन

तिरूअनंतपुरम। PRNewswire/ -- UST, जो कि एक अग्रणी डिजिटल रूपांतरण समाधान कंपनी है, ने 'dxcode', जो कि कॉलेज और यूनिवर्सिटी के छात्रों के लिए साथ आने और अपनी प्रतिभा विकसित करने तथा दिखाने के लिए हैकाथॅन का दूसरा संस्करण है, को लांच करने की घोषणा की है। ST की वार्षिक तकनीकी कॉन्फ्रेन्स D3 से पूर्व यह हैकाथॅन, बैचलर या मास्टर डिग्री कोर्स की पढ़ाई करने वाले छात्रों के लिए आयोजित किया जाएगा। तिरूअनंतपुरम, केरल में ST के अत्याधुनिक तकनीकी परिसर में आयोजित डी3 (ड्रीम, डेवेलप और डिसरप्ट) एसटी की सबसे प्रखर प्रतिभााओं के लिए नवीनतम उभरती डिजिटल तकनीक के उपयोग द्वारा सीखने, प्रतिस्पर्धा करने, आपसी सहयोग करने और विकास करने का अवसर प्रदान करेगी।

2019 में प्रारंभ dxcode (जिसे डिकोड कहा जाता है) छात्रों को वास्तविक जीवन की कुछ समस्याएं हल करने, और नवप्रवर्तन, समस्या-समाधान, डिज़ाइन थिंकिंग, और प्रोग्रामिंग के कौशलों के लिए उनकी प्रेरणाएं जांचने के लिए उन्हें एक प्लेटफार्म प्रदान करने हेतु एसटी की एक पहल है। हैकाथॅन के लिए प्रतिभागी Dx website पर 4-10 नवम्बर 2022 के बीच रजिस्ट्रेशन करा सकते हैं।

इस कार्यक्रम के संबंध में अपने विचार व्यक्त करते हुए Manu Gopinath, चीफ ऑपरेटिंग ऑफिसर, एसटी, ने कहा कि, "Dxcode नए उभरते तकनीकी विशेषज्ञों और नवप्रवर्तक सोच रखने वालों के लिए यह दिखाने का एक मौका है, कि चुनौतीपूर्ण समस्याएं हल करने में तकनीक किस तरह मदद कर सकती है। महामारी के बाद इस वर्ष Dxcode 2022 को फिर से वापस लाते हुए हमें प्रसन्नता है और नवप्रवर्तन व तकनीक के बूते वास्तविक जगत से जुड़ी चुनौतियां हल करने के लिए पूरे भारत से कॉलेजों और यूनिवर्सिटीज के सबसे प्रखर छात्रों का हमारे खूबसूरत तकनीकी परिसर में स्वागत करना हमारे लिए खुशी की बात है।

हैकाथॅन के राउंड और तारीखें

हर टीम में टीम लीडर सहित 2-4 सदस्य होंगे। कार्यक्रम में तीन राउंड होंगे। प्रथम दो राउंड ऑनलाइन राउंड होंगे, और हर राउंड से शॉर्टलिस्ट की गई टीमें अगले राउंड में जाएंगी।

रजिस्ट्रेशन और आइडिया सबमिट करना- 4 नवम्बर - 10 नवम्बर, 2022

राउंड 1 - प्रोग्रामिंग चैलेंज- 11 नवम्बर - 13 नवम्बर, 2022

राउंड 2 - टॉप 10 टीमों से वीडियो साक्षात्कार- 18 नवम्बर - 2 दिसम्बर, 2022

राउंड 3 - टॉप 5 टीमों के लिए 24-घंटे का हैकाथॅन - 11 दिसम्बर - 12 दिसम्बर, 2022

शीर्ष 5 टीमों को पुरस्कार - 15 दिसम्बर, 2022

यूएसटी के तिरूअनंतपुरम परिसर में, फाइनल व्यक्तिगत हैकाथॅन 24-घंटे की स्पर्धा होगी, जिसमें क्वॉलिफाई टीमें अपने विचारों के प्रोटोटाइप बनाएंगी और निर्णायकों के एक पैनल के सामने पेश करेंगी। निर्णायकों के वोट के आधार पर विजेताओं का चयन किया जाएगा। फाइनल व्यक्तिगत हैकाथॅन में भाग लेने के लिए चुनी गई शीर्ष 5 टीमों को डी3 कॉन्फ्रेन्स में भाग लेने का अवसर मिलेगा जिसे 15 दिसम्बर, 2022, को केरल, भारत में ओ बाय तमारा में आयोजित किया जाएगा।

Dxcode 2022 प्रतिभागियों के लिए शानदार इनाम जीतने का एक रोमांचक अवसर है।

प्रथम पुरस्कार विजेता टीम को सात लाख भारतीय रूपए का इनाम दिया जाएगा, दूसरा पुरस्कार जीतने वाली टीम को पांच लाख का इनाम मिलेगा, और तीसरा पुरस्कार जीतने वाली टीम को तीन लाख का इनाम मिलेगा, जबकि अन्य दो टीमों को सम्मान पत्र के साथ प्रत्येक को दो लाख दिए जाएंगे। इसके अलावा शीर्ष 5 फाइनलिस्ट टीमों के हर सदस्य को ST India ज्वॉइन करने के लिए जॉब ऑफर मिलेगा (नियमों एवं शर्तों के अधीन)।

एसटी के बारे में

22 वर्ष से अधिक समय से, एसटी ने डिजिटल रूपांतरण के माध्यम से वास्तविक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए विश्व की सर्वोत्तम कंपनियों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम किया है। तकनीक से संचालित, लोगों से प्रेरित और हमारे उद्देश्य के मार्गदर्शन में हम डिज़ाइन से ऑपरेशन तक अपने क्लाइंट् ?स से साझेदारी करते हैं। हमारे जीवंत तरीके के माध्यम से हम उनकी मूल चुनौतियों की पहचान करते हैं और नई तरह के समाधान रचते हैं, जो उनकी सोच को साकार करते हैं।

विषयक्षेत्र की गहरी विशेषज्ञता और भविष्य के प्रति सशक्त विचारधारा के साथ हम अपने क्लाइंट्स के संगठनों में नवप्रवर्तन और दक्षता का समावेश करते हैं- और विविध उद्योग क्षेत्रों में और दुनिया भर में मापनीय मूल्य और स्थायी बदलाव प्रदान करते हैं। 30 से अधिक देशों में 30,000 से अधिक कर्मचारियों के साथ हम असीम प्रभाव के लिए प्रयासरत हैं-और इस प्रक्रिया में लाखों लोगों तक पहुंचते हैं। हमें www.UST.com पर देखें।

यूको बैंक ने 30 सितंबर, 2022 को समाप्त तिमाही के वित्तीय परिणामों की घोषणा की

कार्यनिष्पादन की मुख्य विशेषताएं

नई दिल्ली। बैंक ने सितंबर, 2021 को समाप्त तिमाही में रु.205.39 करोड़ के निवल लाभ में 145.64 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज करते हुए सितंबर, 2022 को समाप्त तिमाही के दौरान रु.504.52 करोड़ का निवल लाभ अर्जित किया है।

बैंक का परिचालन लाभ सितंबर, 2021 को समाप्त तिमाही के रु. 1334.15 करोड़ की तुलना में सितंबर, 2022 की तिमाही में रु.1189.78 करोड़ रहा।

बैंक की निवल ब्याज आय सितंबर, 2021 को समाप्त तिमाही के रु.1597.72 करोड़ में 10.76 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज करते हुए सितंबर, 2022 को समाप्त तिमाही में बढ़कर रु. 1769.60 करोड़ हो गई है।

बैंक की अन्य आय सितंबर, 2021 को समाप्त तिमाही के रु.936.07 करोड़ की तुलना में सितंबर, 2022 को समाप्त तिमाही में रु.779.94 करोड़ रहा।

बैंक का कुल कारोबार 30.09.2021 के रु.335237.94 करोड़ में 12.55ल की वृद्धि दर्ज कर दिनांक 30.09.2022 को बढ़कर रु.377304.92 करोड़ हो गया है।

बैंक की कुल जमाराशि 30.09.2021 के रु.213685.92 करोड़ में 10.04 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज करते हुए दिनांक 30.09.2022 को बढ़कर रु.235148.63 करोड़ हो गई है।

बैंक का कासा (घरेलू) 30.09.2022 को 39.57 प्रतिशत है।

बैंक की बचत जमाराशि 30.09.2021 के रु.72892.09 करोड़ में 8.42 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज करते हुए दिनांक 30.09.2022 को बढ़कर रु.79027.12 करोड़ हो गई है।

बैंक का कुल अग्रिम 30.09.2021 के रु.121552.03 करोड़ की तुलना में 16.95 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज करते हुए 30.09.2022 को रु.142156.28 करोड़ हो गया है।

बैंक का सकल एनपीए 30.09.2021 के रु.10909.79 करोड़ (8.98 प्रतिशत) और 30.06.2022 के रु.9739.65 करोड़ (7.42 प्रतिशत) से घटकर 30.09.2022 को रु.9358.92 करोड़ (6.58 प्रतिशत) हो गया है।

बैंक का निवल एनपीए 30.09.2021 के रु.3854.33 करोड़ (3.37 प्रतिशत) और 30.06.2022 के रु.3103.82 करोड़ (2.49ल) से घटकर 30.09.2022 को रु.2700.29 करोड़ (1.99 प्रतिशत) हो गया है।

बैंक का प्रावधान कवरेज अनुपात 30.09.2021 को 90.02 प्रतिशत और 30.06.2022 को 91.96 प्रतिशत से बढ़कर 30.09.2022 को 92.90 प्रतिशत हो गया है।

30.09.2022 को बैंक का पूंजी पर्याप्तता अनुपात 14.02 प्रतिशत और सीईटी -I अनुपात 11.25 प्रतिशत है।

खट्टर ने पलवल में किसानों के लिए बनाए गए शोध केंद्र का उद्घाटन किया

नयी दिल्ली। हरियाणा के मुख्यमंत्री मनोहर लाल खट्टर ने कृषि क्षेत्र में देश के किसानों के समक्ष मौजूदा चुनौतियों को दूर करने के मकसद से हरियाणा के पलवल में प्रमुख कृषि रसायन कंपनी धानुका एग्रीटेक द्वारा स्थापित किये गये एक शोध केन्द्र का शुक्रवार को उद्घाटन किया।

उद्घाटन समारोह को संबोधित करते हुए खट्टर ने कहा, ''धानुका एग्रीटेक रिसर्च एंड टेक्नोलॉजी सेंटर (डार्ट) किसानों के हित के लिए बनाया गया है और यह समय की मांग के अनुरूप किसानों को नयी तकनीक अपनाने के लिए प्रेरित करेगा।''

खट्टर ने कहा कि यह खुशी की बात है कि धानुका समूह ने इस गांव को गोद लिया है जिससे स्थानीय किसान निश्चित रूप से लाभान्वित होगे। उन्होंने किसानों से गेहूं, चावल के चक्र से निकलकर अन्य फसलों की ओर रुख करने की भी अपील की। उन्होंने कहा कि इसके लिए हरियाणा सरकार पानी की अधिक खपत वाली धान की फसल के स्थान पर अन्य फसल अपनाने के लिए 7,000 रुपये प्रति हेक्टेयर की सहायता राशि उपलब्ध करा रही है।

इस मौके पर उपस्थित बिजली एवं भारी उद्योग राज्यमंत्री श्रीकृष्ण पाल गुर्जर ने कहा, ''पलवल जैसे कृषि प्रधान जिले में धानुका समूह की अनुसंधान प्रोत्साहन की यह पहल निश्चित ही अनुकरणीय है।''

इस 6.24 एकड़ में फैले शोध एवं विकास केंद्र में आर्गेनिक सिंथेसिस प्रयोगशाला, फार्मुलेशन प्रयोगशाला, जल एवं मृदा परीक्षण प्रयोगशाला, कृषि शोध एवं विकास प्रयोगशाला, बॉटनिकल प्रयोगशाला, जैव-कीटनाशक प्रयोगशाला, बायोगैस प्रयोगशाला, इंसेक्ट रियरिंग प्रयोगशाला और प्रशिक्षण केंद्र हैं।

इस मौके पर धानुका समूह के अध्यक्ष आर जी अग्रवाल ने कहा, ''हम कृषि क्षेत्र में वैज्ञानिक एवं शोध आधारित सर्वश्रेष्ठ तौर-तरीकों को अपनाने के लिए प्रयासरत हैं।

नवंबर के तीसरे हफ्ते से बजट पूर्व बैठकें

नई दिल्ली। वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण नवंबर के तीसरे सप्ताह से विभिन्न हिस्सेदारों के साथ बजट पूर्व परामर्श शुरू कर सकती हैं। सीतारमण और उनके वरिष्ठ अधिकारी कृषि एवं कृषि प्रसंस्करण उद्योग, उद्योग संगठनों, बुनियादी ढांचा एवं जलवायु परिवर्तन, वित्तीय क्षेत्र एवं पूंजी बाजारों, सेवा एवं कारोबार, सामाजिक क्षेत्र, ट्रेड यूनियन और श्रम संगठनों और अर्थशास्त्रियों व राज्यों के वित्त मंत्रियों के साथ कुल आठ बैठकें करेंगे। एक वरिष्ठ सरकारी अधिकारी ने बिज़नेस स्टैंडर्ड से कहा, 'हम तिथियों को अंतिम रूप दे रहे हैं और जल्द आमंत्रण भेजे जाएंगे।' सूत्रों के मुताबिक मानक के अनुसार 7 बैठकें वित्त मंत्रालय में नवंबर या दिसंबर की शुरुआत में आयोजित की जाएंगी। बहरहाल राज्यों के वित्त मंत्रियों के साथ बैठक मदुरै में हो सकती है, जहां वस्तु एवं सेवा कर परिषद की अगली बैठक होनी है। अधिकारी ने कहा, 'आवाजाही की सुविधा को देखते हुए राज्य के वित्त मंत्रियों के साथ बजट पूर्व बैठक जीएसटी परिषद की बैठक के साथ ही की जा सकती है क्योंकि सभी राज्यों के वित्त मंत्री या उनके प्रतिनिधि वहां मौजूद होंगे। बजट के पहले बातचीत जीएसटी परिषद की बैठक से अलग एक सत्र में होगी।' मानकों के मुताबिक हर साल वित्त मंत्री, वित्त मंत्रालय के 5 सचिवों, मुख्य आर्थिक सलाहकार और अन्य अधिकारियों के साथ विभिन्न हित समूहों की मुलाकात होती है और उनसे आगामी बजट के बारे में सुझाव मांगे जाते हैं। इन बैठकों में शामिल होने वाले प्रतिनिधि बजट से अपनी उम्मीदों व मांगों की सूची देते हैं। लेकिन यह सिर्फ बजट के पहले की इनपुट लेने की बैठक नहीं होती है। व्यय एवं आर्थिक मामलों के विभाग के अधिकारी केंद्र के सभी मंत्रालयों, एजेंसियों व केंद्रशासित प्रदेशों के प्रतिनिधियों से मिलते हैं। इन बैठकों का मकसद वित्त वर्ष 23 के संशोधित अनुमान और वित्त वर्ष 23 के बजट अनुमान का आवंटन तय करना होता है। इसके साथ प्रधानमंत्री भी उद्योग के दिग्गजों के साथ बजट के पहले बैठक करते हैं, जिसका आयोजन नीति आयोग करता है। सत्तासीन भारतीय जनता पार्टी की आर्थिक शाखा भी उपस्थित रहेगी और वह देश भर के विभिन्न हिस्सेदारों से बात करके वित्त मंत्रालय को अपनी सिफारिशें सौंपेगी।

भारत ने द. कोरिया के समक्ष बढ़ते व्यापार घाटे का मुद्दा उठाया

नयी दिल्ली। भारत ने द. कोरिया के साथ बढ़ते व्यापार घाटे को लेकर गहरी चिंता जताई है। वित्त वर्ष 2021-22 में यह घाटा बढ़कर 9.5 अरब डॉलर हो गया। वाणिज्य मंत्रालय ने शुक्रवार को एक बयान में कहा कि भारत और दक्षिण कोरिया के बीच समग्र आर्थिक भागीदारी समझौते को अद्यतन किए जाने से संबंधित नौवें दौर की बैठक में व्यापार घाटा का मुद्दा उठा। यह बैठक तीन-चार नवंबर को कोरिया की राजधानी सोल में संपन्न हुई। दोनों देशों ने इस समझौते को एक-दूसरे के लिए फायदेमंद बनाने की जरूरत पर बल देते हुए अग्रोन्मुखी एवं परिणामोन्मुखी रवैया अपनाने की बात कही। इस दौरान सेवाओं, उत्पादों, निवेश जैसे मुद्दों पर गठित उप-समूहों ने गहन चर्चा की। वाणिज्य मंत्रालय ने कहा, ''भारत ने कोरिया के साथ बढ़ते व्यापार घाटे को लेकर गहरी चिंता जताई और बाजार पहुंच मुहैया कराने से संबंधित मुद्दों पर चर्चा की।

एनएचपीसी के निगम मुख्यालय में सतर्कता जागरूकता सप्ताह 2022 के अंतर्गत नुक्कड़ नाटक

मानव श्रृंखला तथा वाकथान का आयोजन

फरीदाबाद। एनएचपीसी के निगम मुख्यालय, फरीदाबाद में सतर्कता जागरूकता सप्ताह 2022 के अंतर्गत दिनांक 04.11.2022 को नुक्कड़ नाटक तथा मानव श्रृंखला आयोजित की गई। नुक्कड़ नाटक तथा मानव श्रृंखला मुरारी लाल सीनियर सेकेंडरी स्कूल, फरीदाबाद के सहयोग से आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में स्कूल के छात्र-छात्राओं द्वारा स्कूल प्रांगण से एनएचपीसी के निगम मुख्यालय तक सतर्कता जागरूकता हेतु मानव श्रृंखला बनाई गई। मानव श्रृंखला के पश्चात एनएचपीसी प्रांगण में छात्र-छात्राओं द्वारा नुक्कड़ नाटक का भी आयोजन किया गया।

समाज में फैले भ्रष्टाचार को जड़ से मिटाने हेतु छात्र-छात्राओं द्वारा नुक्कड़ नाटक तथा मानव श्रृंखला के माध्यम से जनसंदेश दिया गया। इसके साथ ही बच्चों द्वारा भ्रष्टाचार मुक्त भारत - विकसित भारत थीम के अंतर्गत आयोजित किए जा रहे सतर्कता जागरूकता सप्ताह के मुख्य उद्देश्यों तथा भ्रष्टाचार उन्मूलन में एनएचपीसी की भूमिका को रेखांकित किया गया। इस कार्यक्रम के अंतर्गत एनएचपीसी कार्मिकों हेतु एक वाकथान का भी आयोजन किया गया। वाकथान को श्री वाई. के. चौबे, अध्यक्ष व प्रबंध निदेशक, एनएचपीसी द्वारा झंडी दिखाकर रवाना किया गया। इस अवसर पर श्री आर. पी. गोयल, निदेशक (वित्त) तथा श्री बिश्वजीत बासु, निदेशक (परियोजनाएं), एनएचपीसी भी उपस्थित थें। वाकथान में बड़ी संख्या में स्कूली छात्रों तथा एनएचपीसी कार्मिकों ने प्रतिगिता की एवं सतर्कता के प्रति अपने संकल्प को दोहराया।

दिनांक 31.10.2022 से 06.11.2022 तक आयोजित किए जा रहे सतर्कता जागरूकता सप्ताह के अंतर्गत निबंध लेखन, वाद विवाद, कविता पाठ, चित्रकला प्रतियोगिता जैसे विविध कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है।

लगातार गिरावट से उबरा शेयर बाजार

मुंबई। अमेरिका में अक्टूबर के रोजगार आंकड़े मजबूत रहने और चीन में कोविड नियमों में ढील दिये जाने की उम्मीद से वैश्विक बाजार में आई तेजी से उत्साहित निवेशकों की स्थानीय स्तर पर धातु, कमोडिटीज, ऊर्जा, इंडस्ट्रियल्स, सर्विसेज और तेल एवं गैस समेत 13 समूहों में हुई लिवाली की बदौलत आज शेयर बाजार पिछले लगातार दो दिन की गिरावट से उबरकर तेजी पर रहा।

बीएसई का तीस शेयरों वाला संवेदी सूचकांक सेंसेक्स 113.95 अंक की छलांग लगाकर 60950.36 अंक और नेशनल स्टॉक एक्सेंच (एनएसई) का निफ्टी 76.75 अंक चढ़कर 18129.45 अंक पर रहा। हालांकि दिग्गज कंपनियों की तरह बीएसई की छोटी कंपनियों में तो तेजी रही लेकिन मझौली कंपनियों के शेयर स्थिर रहे। इस दौरान मिडकैप 25,647.07 अंक पर टिका रहा वहीं स्मॉलकैप 0.41 प्रतिशत मजबूत होकर 29,107.24 अंक पर रहा।

इस दौरान बीएसई में कुल 3585 कंपनियों के शेयरों में कारोबार हुआ, जिनमें से 2034 में लिवाली जबकि 1412 में बिकवाली हुई वहीं 139 में कोई बदलाव नहीं हुआ। इसी तरह एनएसई में 28 कंपनियों के शेयर हरे जबकि शेष 22 लाल निशान पर बंद हुए।

बीएसई में 13 समूहों में तेजी जबकि शेष सात गिरावट पर रहे। इस दौरान धातु 2.90, कमोडिटीज 2.02, सीडी 0.15, ऊर्जा 0.84, वित्तीय सेवाएं 0.11, इंडस्ट्रियल्स 0.53, दूरसंचार 0.18, यूटिलिटीज 0.37, ऑटो 0.06, कैपिटल गुड्स 0.51, तेल एवं गैस 0.59, पावर 0.43, रियल्टी 0.30 और सर्विसेज समूह के शेयर 1.29 प्रतिशत चढ़ गए।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर तेजी का रुख रहा। इस दौरान ब्रिटेन का एफटीएसई 0.88, जर्मनी का डैक्स, हांगकांग का हैंगसेंग 5.36 और चीन के शंघाई कंपोजिट में 2.43 प्रतिशत की उछाल रही वहीं जापान का निक्केई 1.68 प्रतिशत लुढ़क गया।शुरुआती कारोबार में सेंसेक्स 138 अंक की गिरावट लेकर 60,698.27 अंक पर खुला और बिकवाली के दबाव में दोपहर से पहले 60,666.01 अंक के निचले स्तर तक गिर गया।

लिवाली होने से कारोबार के अंतिम चरण में यह 61,004.49 अंक के उच्चतम स्तर पर पहुंचा। अंत में पिछले दिवस के 60,836.41 अंक के मुकाबले 0.19 प्रतिशत की बढ़त लेकर 60,950.36 अंक पर रहा।

इसी तरह निफ्टी भी 18,053.40 अंक पर सपाट खुला। सत्र के दौरान यह 18,017.15 अंक के निचले जबकि 18,135.10 अंक के उच्चतम स्तर पर रहा। अंत में पिछले सत्र के 18,052.70 अंक की तुलना में 0.36 प्रतिशत चढ़कर 18,117.15 अंक पर पहुंच गया।

इस दौरान सेंसेक्स की 18 कंपनियों में बिकवाली जबकि शेष में लिवाली हुई। मुनाफा कमाने वाली कंपनियों में बजाज फिनसर्व 4.55, टाटा स्टील 2.50, अल्ट्रासिमको 2.50, एसबीआई 1.53, रिलायंस 1.43, एशियन पेंट 1.28, बजाज फाइनेंस 1.24, विप्रो 0.51, एलटी 0.40, इंडसइंड बैंक 0.40, एक्सिस बैंक 0.38, टीसीएस 0.29, टाइटन 0.18, महिंद्रा एंड महिंद्रा 0.18, एचसीएल टेक 0.10, टेक महिंद्रा 0.07, कोटक बैंक 0.06 और नेस्ले इंडिया 0.06 प्रतिशत शामिल है।

सीएनजी 89.50 रुपये प्रति किलो पर पहुंची

मुंबई। सरकारी नियंत्रण वाली गैस आपूर्तिकर्ता महानगर गैस लिमिटेड (एमजीएल) ने शुक्रवार को एक बार फिर सीएनजी एवं पाइप के जरिये आपूर्ति वाली रसोई गैस (पीएनजी) की कीमतों में वृद्धि कर दी।

अक्टूबर से एमजीएल का कीमतें बढ़ाने का यह दूसरा मौका है। केंद्र ने अक्टूबर की शुरुआत में घरेलू स्तर पर उत्पादित गैस की कीमत वित्त वर्ष की दूसरी छमाही के लिए 40 प्रतिशत तक बढ़ा दी थी। इसके पहले अप्रैल में भी पहली छमाही के लिए गैस के दाम 110 प्रतिशत बढ़ाए गए थे।

एक अप्रैल को वाहनों में ईंधन के तौर पर इस्तेमाल होने वाली सीएनजी के दाम 60 रुपये प्रति किलो था जबकि घरेलू रसोई गैस पीएनजी 36 रुपये प्रति घन मीटर के भाव पर थी।

गैस की कीमतों में आई तेजी के बीच डॉलर के मुकाबले रुपये की कीमत गिरने के असर को कम करने के लिए एमजीएल ने सीएनजी और पीएनजी के दाम बढ़ा दिए हैं।

अब सीएनजी 3.50 रुपये प्रति किलो महंगी होकर 89.50 रुपये प्रति किलो हो गई है। वहीं घरेलू पीएनजी 1.50 रुपये महंगी होकर 54 रुपये प्रति घन मीटर हो गई है। नई दरें आधी रात से प्रभावी हो जाएंगी।

नियंत्रित कीमत वाली गैस की कम आपूर्ति को देखते हुए एमजीएल ने कहा कि आपूर्ति 10 प्रतिशत तक घट गई है जिससे उसे मांग बनी रहने से अपेक्षाकृत ऊंची कीमतों पर गैस खरीदनी पड़ रही है।

एमजीएल ने दावा किया कीमत बढ़ने के बावजूद महानगरों में सीएनजी अब भी पेट्रोल से करीब 42 प्रतिशत सस्ती है जबकि पीएनजी के दाम एलपीजी से करीब आठ प्रतिशत कम हैं।

शार्ट न्यूज

सिटी एफसी को मिली बड़ी जीत

नयी दिल्ली। सीटी एफसी ने पिछले मैच में मिली हार के बाद शानदार वापसी करते हुए शुक्रवार को फुटबॉल दिल्ली सीनियर डिवीजन लीग में यंगमेन एफसी को 5-0 से हराया। नेहरू स्टेडियम मैदान पर खेले गए फुटबॉल मैच में विजेता टीम के गोल रोनाल्ड, सायन, राहुल, सागर मंडल और जोएल ने किये। सिटी को पिछले मैच में सीआईएसएफ के हाथों 0-8 की करारी शिकस्त मिली थी, लेकिन यंगमेन के खिलाफ आज उसके तेवर बदले हुए नज़र आए और शानदार वापसी करते हुए उसने यंगमेन को घुटने टेकने के लिए मजबूर कर दिया। सिटी ने यंगमेन पर शुरू से ही दबदबा बनाए रखा, हालांकि तेज तर्रार स्ट्राइकर सागर ने खराब खेल के चलते छह मौके बेकार किये। फुटबॉल दिल्ली (एफडी) द्वारा आयोजित सीनियर डिवीजन लीग में शनिवार को दिल्ली यूनाइटेड को अहबाब का सामना करना है जबकि सीआईएसएफ का मुकाबला नेशनल युनाइटेड से होगा।

हायलो ओपन : क्वार्टरफाइनल में हारे सात्विक-चिराग, त्रिशा-गायत्री सेमीफाइनल में

सारब्रकेन। सात्विकसाईराज रंकीरेड्डी और चिराग शेट्टी की भारतीय पुरुष युगल जोड़ी को यहां हायलो ओपन के क्वार्टरफाइनल में शुक्रवार को इंग्लैंड के बेन लेन और शॉन वेन्डी के हाथों हार का सामना करना पड़ा। लेन-वेन्डी की जोड़ी ने सात्विक-चिराग को 21-17, 21-14 से हराकर बीडब्ल्यूएफ विश्व टूर के यूरोपीय चरण में उनका स्वर्णिम सफर समाप्त किया। बीते सोमवार को अपना पहला फ्रेंच ओपन सुपर 750 खिताब जीतने वाले सात्विक-चिराग पहले गेम में 13-8 की बढ़त लेकर अच्छी लय में दिख रहे थे, लेकिन ब्रिटिश जोड़ी ने वापसी की और लगातार छह पॉइंट बनाते हुए 21-17 से गेम जीत लिया। विश्व रैंकिंग की 13 नंबर जोड़ी ने दूसरे गेम में भारतीय युगल को कोई मौका नहीं दिया और ब्रेक तक 11-7 की बढ़त बना ली। गेम के अगले हिस्से में भी सात्विक-चिराग सात पॉइंट ही बना सके और लेन-वेन्डी की जोड़ी ने 21-14 से गेम जीतकर मैच अपने नाम कर लिया। इसी बीच, गायत्री गोपीचंद और त्रिशा जॉली की भारतीय जोड़ी ने महिला युगल क्वार्टर फाइनल में चीनी ताइपे की सू या चिंग और लिन वान चिंग को 21-17, 18-21, 21-8 से हराकर हायलो ओपन के सेमीफाइनल में प्रवेश किया। दुनिया की 28वें नंबर की भारतीय जोड़ी ने पहला गेम 21-17 से अपने नाम किया, जबकि दूसरा गेम चीनी प्रतिद्वंदियों ने जीतकर मैच को निर्णायक गेम में पहुंचा दिया।

टोक्यो पैरा चैंपियनशिप के सेमीफाइनल में पहुंचे भगत, परमार

टोक्यो। टोक्यो पैरा ओलंपिक के स्वर्ण पदक विजेता प्रमोद भगत ने शुक्रवार को बीडब्ल्यूएफ पैरा बैडमिंटन चैंपियनशिप के क्वार्टरफाइनल में यूक्रेन के ओलेकसांडर चिर्कोव को 2-0 से मात दी। भगत ने एसएल3 की सेमीफाइनल में पहुंचने के लिये चिर्कोव को 21-17, 21-19 से हराया। महिला एकल में अनुभवी एसएल3 शटलर पारुल परमार ने ब्राजील की एड्रिएन एविला को 21-12, 19-21, 21-15 से हराकर सेमीफाइनल में जगह बनाई। प्रमोद के अलावा, रितेश कुमार ने भी अपना पुरुष एकल एसएल3 क्वार्टरफाइनल मैच जीता। रितेश ने इंग्लैंड के विलियम स्मिथ को 21-18, 21-12 से हराया, हालांकि मनोज सरकार को फ्रांस के मैथ्यू थॉमस को 15-21, 21-12, 21-9 से हराने में काफी मशक्कत करनी पड़ी। एसएल4 पुरुष एकल क्वार्टरफाइनल में, सुकांत कदम ने सिंगापुर के ची हिओंग एंग पर 21-10, 21-15 से जीत दर्ज की। रूथिक रघुपति और मानसी जोशी की भारतीय जोड़ी ने एसएल3-एसयू5 मिश्रित युगल क्वार्टरफाइनल में जैन निकलास पोट-कात्रेइक सीबर्ट को पीछे छोड़ दिया। भारतीय जोड़ी ने अपन जर्मन प्रतिद्वंदियों को 26 मिनट में 21-18, 21-10 से शिकस्त दी। इसी बीच, मनदीप कौर और मनीषा रामदास ने महिला युगल एसएल3-एसयू5 क्वार्टरफाइनल में अपनी हमवतन मानसी जोशी और शांति विश्वनाथन को 21-17, 21-15 से मात दी। मनीषा ने हमवतन शांतिया के खिलाफ अपना एसयू5 महिला एकल मैच भी 21-8, 21-8 से जीता।

ऑस्ट्रेलिया से हारने के बाद मोहम्मद नबी ने अफगानिस्तान के कप्तान के पद से दिया इस्तीफा

नई दिल्ली। अफगानिस्तान के कप्तान मोहम्मद नबी ने टी20 वर्ल्ड कप 2022 के 38वें मुकाबले के बाद कप्तानी के पद से इस्तीफा दे दिया है। उन्होंने टीम की कप्तानी छोड़ने का ऐलान ट्विटर पर एक पोस्ट के जरिए दिया। अफगानिस्तान को टी20 वर्ल्ड कप 2022 के अपने आखिरी मैच में ऑस्ट्रेलिया के हाथों 4 रनों से हार का सामना करना पड़ा। टी20 वर्ल्ड कप के 8वें संस्करण में अफगानिस्तान एक भी मैच नहीं जीत पाई। मोहम्मद नबी ने अपनी पोस्ट में लिखा हमारी टी20 विश्व कप यात्रा समाप्त हो गई है। जो हमें परिणा मिले न तो हमें और न ही हमारे समर्थकों को उसकी उम्मीद थी। हम भी उतने ही निराश हैं जितने आप मैचों के परिणाम से हैं। पिछले एक साल से हमारी टीम की तैयारी इस स्तर तक नहीं थी कि एक कप्तान चाहेगा या किसी बड़े टूर्नामेंट के लिए इसकी जरूरत होगी। इसके अलावा, पिछले कुछ दौरों में टीम प्रबंधन, चयन समिति और 4 एक ही पृष्ठ पर नहीं थे, जिसका टीम संतुलन पर प्रभाव पड़ा। इसलिए, उचित सम्मान के साथ मैं कप्तानी छोड़ने का ऐलान कर रहा हूं और जब प्रबंधन और टीम को मेरी आवश्यकता होगी तो मैं अपने देश के लिए खेलना जारी रखूंगा।

इंग्लैंड के लिए सेमीफाइनल की तस्वीर हुई साफ, बस अब करना होगा ये काम

नई दिल्ली। ऑस्ट्रेलिया बनाम अफगानिस्तान मैच के बाद इंग्लैंड के लिए सेमीफाइनल में पहुंचने की तस्वीर साफ हो चुकी है। जोस बटलर की अगुवाई वाली इंग्लैंड की टीम को सुपर-12 का अगला मैच एशियाई चैंपियन श्रीलंका के खिलाफ शनिवार 5 नवंबर को खेलना है। अगर इस मैच में इंग्लिश टीम जीत दर्ज करती है तो वह ग्रुप-1 से सेमीफाइनल में पहुंचने वाली दूसरी टीम बन जाएगी, वहीं अगर इस टीम को हार का सामना करना पड़ता है तो ऑस्ट्रेलिया के नाम के आगे क्वालीफाई का टैग लगेगा। अफगानिस्तान पर जीत के साथ ऑस्ट्रेलिया के 7 अंक हो गए हैं। वहीं अगर इंग्लैंड श्रीलंका पर जीत दर्ज करता है तो उनके भी 7 अंक हो जाएंगे, मगर बेतर नेट रन रेट होने की वजह से इंग्लैंड क्वालीफाई कर जाएगा। अफगानिस्तान पर जीत के बाद ऑस्ट्रेलिया का नेट रन रेट -0.17 का है, वहीं इंग्लैंड का 4 मैचों के बाद नेट रन रेट +0.547 का है। अब सेमीफाइनल में प्रवेश करने के लिए इंग्लैंड को एक जीत की दरकार है। इंग्लैंड अभी 4 में से 2 मैच जीतकर प्वाइंट्स टेबल में तीसरे पायदान पर है।

जेल में दंगा, दो कैदी की मौत, 18 घायल

क्विटो। इक्वाडोर के बंदरगाह शहर ग्वायाकिल के लिटोरल पेनिटेनशियरी में इस सप्ताह प्रतिद्वंद्वी आपराधिक गुटों के बीच संघर्षों में कम से कम दो कैदियों की मौत हो गई और 18 अन्य घायल हो गए। प्राप्त रिपोर्ट के मुताबिक पुलिस की ओर से देश की सबसे बड़ी जेल से 1,002 कैदियों को अन्य जेलों में स्थानांतरित करने की प्रक्रिया शुरू पर मंगलवार को संघर्ष शुरू हो गया जो गुरुवार तक जारी रहा। दंगों के बारे में एक ताजा रिपोर्ट में पुलिस ने कहा कि परस्पर संघर्ष में दो कैदी मारे गए हैं और अन्य 18 घायल हुए हैं। घायलों में छह कैदी, नौ पुलिस अधिकारी और तीन सैन्यकर्मी शामिल हैं। राष्ट्रीय पुलिस क्षेत्र-आठ के कमांडर विक्टर जाराटे ने स्थानीय मीडिया को बताया कि सामरिक इकाइयों के 700 पुलिस अधिकारियों और 470 सशस्त्र बलों ने जेल पर नियंत्रण पाने के लिए हस्तक्षेप किया और दंगों को रोकने के लिए कार्रवाई की। इस बीच अभियोजक कार्यालय ने ट्वीट किया कि उसने घटनाओं की प्रारंभिक जांच शुरू कर दी है।

न्यूजीलैंड ने जीत के साथ सेमीफाइनल के लिये क्वालीफाई किया

एडिलेड। न्यूजीलैंड ने केन विलियमसन (61) के विस्फोटक अर्द्धशतक और लोकी फर्ग्यूसन (22/3) की अगुवाई में गेंदबाजों के शानदार प्रदर्शन की बदौलत शुक्रवार को टी20 विश्व कप 2022 के सुपर-12 मुकाबले में आयरलैंड को 35 रन से मात देकर सेमीफाइनल के लिये क्वालीफाई किया।

न्यूजीलैंड ने ग्रुप-1 मैच में आयरलैंड के सामने 186 रन का लक्ष्य रखा, जिसके जवाब में आयरलैंड 150 रन ही बना सकी।

लंबे समय से खराब फॉर्म में चल रहे विलियमसन ने 35 गेंदों पर पांच चौकों और तीन छक्कों की मदद से 61 रन बनाकर अपनी टीम को मजबूत स्कोर तक पहुंचाया। विलियमसन की पारी की मदद से न्यूजीलैंड 200 रन की ओर अग्रसर थी, लेकिन जोशुआ लिटिल ने 19वें ओवर में हैट्रिक लेकर उन्हें 185 रन पर रोक दिया।

आयरलैंड के सलामी बल्लेबाज पॉल स्टर्लिंग और एंड्र्यू बालबर्नी ने अपनी टीम को शानदार शुरुआत दिलाई, हालांकि अन्य बल्लेबाज इस शुरुआत को भुना नहीं सके।

स्टर्लिंग ने 27 गेंदों पर तीन चौके और एक छक्का लगाकर 37 रन बनाये जबकि बालबर्नी ने 25 गेंदों पर 30 रन की पारी खेली। स्पिन खेलने की असमर्थता एक बार फिर आयरलैंड के आड़े आई और ईश सोढ़ी-मिशेल सैंटनर की जोड़ी उनके लिये घातक साबित हुई। दोनों ने मध्य ओवरों में चार विकेट लेकर रनगति पर लगाम लगाई जिससे आयरलैंड उभर नहीं सकी।

न्यूजीलैंड ने पांच मैचों में सात पॉइंट के साथ ग्रुप-1 के शीर्ष पर पहुंचकर

सेमीफाइनल के लिये क्वालीफाई कर लिया है।टी20 विश्व कप 2021 की चैंपियन ऑस्ट्रेलिया सात पॉइंट के साथ दूसरे स्थान पर है, हालांकि उसका रन रेट पांच पॉइंट वाली इंग्लैंड से खराब है, जिसे शनिवार को श्रीलंका के खिलाफ अपना आखिरी ग्रुप स्टेज मुकाबला खेलना है। आयरलैंड ने टॉस जीतकर न्यूजीलैंड को बल्लेबाजी के लिये बुलाया। फिन ऐलेन ने अपनी टीम को विस्फोटक शुरुआत दिलाते हुए 18 गेंदों पर पांच चौकों और एक छक्के के साथ 32 रन बनाये। उन्होंने डेवन कॉनवे के साथ पहले विकेट के लिये 52 रन की साझेदारी की, हालांकि कॉनवे 33 गेंदों पर 28 रन ही बना सके।

विलियमसन ने इस विस्फोटक शुरुआत को भुनाते हुए आक्रामक क्रिकेट खेला और टूर्नामेंट में अपना पहला अर्द्धशतक जड़ा। डेरिल मिशेल ने विलियमसन का साथ देते हुए 21 गेंदों पर दो चौकों के साथ 31 रन बनाये, जबकि दोनों के बीच 60 रन की साझेदारी हुई। जोशुआ लिटिल ने 19वें ओवर में विलियमसन, जेम्स नीशम और मिशेल सैंटनर को आउट करके अपनी हैट्रिक पूरी की, जिसकी बदौलत आयरलैंड ने न्यूजीलैंड को 185 रन पर रोक दिया।

इसके अलावा गैरेथ डेलानी ने दो जबकि मार्क एडेयर ने एक विकेट लिया।

आयरलैंड के सलामी बल्लेबाजों ने लक्ष्य का पीछा करते हुए टीम को शानदार शुरुआत दिलाई और पहले विकेट के लिये 68 रन जोड़े। एंड्र्यू बालबर्नी और पॉल स्टर्लिंग की जोड़ी मैच को न्यूजीलैंड से दूर ले जा रही थी लेकिन स्पिन खेलने की असमर्थता एक बार फिर आयरलैंड के आड़े आई।

ईश सोढ़ी और मिशेल सैंटनर की जोड़ी ने मध्य ओवरों में रनगति पर लगाम कसते हुए दो-दो विकेट लिये। सोढ़ी ने स्टर्लिंग और लॉर्कान टकर को आउट किया जबकि सैंटनर ने बालबर्नी और हैरी टेक्टर का विकेट निकाला। पहले आठ ओवरों में बिना किसी नुकसान के 68 रन बनाने के बाद आयरलैंड अगले सात ओवरों में पांच विकेट गंवाकर 35 रन ही जोड़ सकी।

जॉर्ज डॉकरेल ने (23) ने अंत में कुछ अच्छे शॉट खेले लेकिन वह केवल हार के अंतर को ही कम कर सके।

रोमांचक मैच में चार रन से जीती ऑस्ट्रेलिया

एडिलेड। ऑस्ट्रेलिया ने ग्लेन मैक्सवेल (54 नाबाद) के जुझारू अर्द्धशतक की बदौलत शुक्रवार को टी20 विश्व कप 2022 के रोमांचक सुपर-12 मुकाबले में अफगानिस्तान को चार रन से हराकर सेमीफाइनल में पहुंचने की उम्मीदों को बरकरार रखा। ऑस्ट्रेलिया ने ग्रुप-1 के मैच में अफगानिस्तान को 169 रन का लक्ष्य दिया, जिसके जवाब में अफगानिस्तान 164 रन ही बना सकी। अफगानिस्तान ने लक्ष्य का पीछा करते हुए 13 ओवर में दो विकेट के नुकसान पर 98 रन बना लिये थे, लेकिन 14वें ओवर में गुलबदीन नायब (39) के रनआउट होने से अफगान टीम के विकेटों की झड़ी लग गई। अफगानिस्तान ने चार रन के अंदर चार विकेट गंवाए जिसने उनकी जीत की संभावनाओं को मुश्किल बना दिया। आठवें नंबर पर बल्लेबाजी करने आए राशिद खान ने 23 गेंदों पर तीन चौकों और चार छक्कों की बदौलत 48 रन बनाये, लेकिन अपनी टीम को जीत तक नहीं ले जा सके। ऑस्ट्रेलिया ने पांच मैचों में सात अंकों के साथ सेमीफाइनल में पहुंचने की संभावना बरकरार रखी है, हालांकि उनका रन रेट इंग्लैंड से खराब है। पांच पॉइंट के साथ ग्रुप-1 में तीसरे स्थान पर मौजूद इंग्लैंड अगर शनिवार को श्रीलंका से अपना मुकाबला जीत लेती है तो गत चैंपियन ऑस्ट्रेलिया टूर्नामेंट से बाहर हो जाएगी।

ऑस्ट्रेलिया के दिग्गज शेन वॉटसन भी विराट कोहली की बल्लेबाजी के हुए मुरीद

नई दिल्ली। विराट कोहली की बल्लेबाजी के मुरीद ऑस्ट्रेलिया के पूर्व हरफनमौला शेन वॉटसन ने टी20 विश्व कप में उनके रिकॉर्ड को गजब बताया है। कोहली अब तक इस टी20 विश्व कप में तीन अर्धशतक लगा चुके हैं और टी20 विश्व कप के इतिहास में सर्वाधिक रन बनाने वाले बल्लेबाज बन गए। उन्होंने श्रीलंका के पूर्व कप्तान महेला जयवर्धने का 1016 रन का रिकॉर्ड तोड़ा। वॉटसन ने कहा, टी20 विश्व कप में 80 से ऊपर की औसत से एक हजार से अधिक रन। कमाल के आंकड़े हैं। उन्होंने कहा, टी20 क्रिकेट काफी जोखिम भरा होता है। बल्लेबाजी में जोखिम लेने पड़ते हैं और उसने इतनी जबर्दस्त औसत से रन बनाकर भारत के लिये इतने मैच जीते हैं। कोहली ने इस विश्व कप में अब तक 220 रन बना लिये हैं।

टीम ने मुझे विस्फोटक बल्लेबाजी की आजादी दी : सूर्यकुमार यादव

एडिलेड। अंतर्राष्ट्रीय क्रिकेट परिषद (आईसीसी) की रैंकिंग में नंबर वन में पहुंचे टी20 बल्लेबाज सूर्यकुमार यादव ने अपने विस्फोटक खेल का श्रेय भारतीय क्रिकेट टीम के प्रबंधन को दिया है।

सूर्यकुमार ने आईसीसी के साथ एक साक्षात्कार में शुक्रवार को कहा, भारतीय टीम प्रबंधन की ओर से मिली आज़ादी किसी भी खिलाड़ी के लिये बहुत प्रेरणादायक है, क्योंकि मैं बल्लेबाजी क्रम में जहां खेलता हूं वहां आपके ऊपर काफी दबाव होता है। मुझे जिस तरह से अपने अंदाज में खेलने की आजादी दी गयी है, मैं उसके कारण अपने खेल का आनंद ले पा रहा हूं। सूर्यकुमार ने कहा, अगर मैं 10 में से सात बार सफल हो रहा हूं तो क्यों न सकारात्मक रवैया अपनाया जाए?

पिछले साल मार्च में इंग्लैंड के खिलाफ घरेलू टी20 शृंखला में पदार्पण करने वाले सूर्यकुमार भारतीय टीम के महत्वपूर्ण खिलाड़ी बन गए हैं। वह अब तक 177 के स्ट्राइक रेट से 11 अर्द्धशतक और एक शतक जड़ चुके हैं। सूर्यकुमार ने कहा, मैं नंबर एक रैंकिंग से खुश हूं और मैंने इसके लिये मेहनत की है। यहां तक पहुंचना मुश्किल था लेकिन यहां रहना और मुश्किल होगा। यह चुनौतीपूर्ण होगा लेकिन मैं इसके लिये तैयार हूं।

भारतीय मध्यक्रम के बल्लेबाज का कहना है कि वह ज़िम्बाब्वे के खिलाफ आगामी मैच में अपना रवैया नहीं बदलेंगे और आक्रामक खेल के साथ विपक्षी गेंदबाजों पर दबाव बनाने का पूरा प्रयास करेंगे। सूर्यकुमार ने कहा, मैंने टी20 क्रिकेट के बारे में जो सीखा है, वह यह है कि सातवें और 15वें ओवर तक अन्य टीमें खेल को नियंत्रित करने की कोशिश करती हैं। यही मैच का वह हिस्सा है जहां मैं खुद को चुनौती देने की कोशिश करता हूं और खेल को आगे बढ़ाता हूं। भारतीय विस्फोटक बल्लेबाज ने कहा, मैं एक अच्छे स्ट्राइक रेट के साथ बल्लेबाजी करता हूं, ताकी मेरी टीम और बाद में खेल खत्म करने के लिए आने वाले बल्लेबाजों का काम आसान हो जाए।

बीच राह मौलवियों के सिर से पगड़ी उतार कर फेंक रहीं ईरानी महिलाएं, वीडियो भी बनाए

तेहरान। ईरान में हिजाब विरोधी प्रदर्शन लगातारलजारी हैं। 22 वर्षीय महसा अमिनी की मौत से शुरू हुए विरोध प्रदर्शनों में कई लोगों की जान जा चुकी है और कई ईरानी सरकार की कैद में हैं लेकिन प्रदर्शन रुकने का नाम नहीं ले रहे हैं। यही नहीं, अब ईरान के हिजाब विरोधी प्रदर्शन एक नया मोड़ ले रहे हैं। प्रदर्शनकारी अब हिजाब समर्थक मौलवियों को निशाना बना रहे हैं। युवा ईरानी महिलाएं मौलवियों के सिर से पगड़ी उतारते देखी जा रही हैं। वे इसका वीडियो भी बना रही हैं और शेयर कर रही हैं।

सोशल मीडिया पर कई वीडियो तेजी से वायरल हो रहे हैं जिनमें स्कूली छात्राओं और लड़कों को मौलवियों की पगड़ी उतारते देखा जा सकता है। एक वायरल वीडियो में, युवा लड़की खाली सड़क पर चल रहे मौलवी के पीछे भागकर आती है और उसकी पगड़ी उतार देती है। पगड़ी उतराकर

लड़की तुरंत भाग जाती है और मौलवी पीछे मुड़कर अपनी पगड़ी को उठाते हुए देखा जा सकता है। वीडियो शेयर करते हुए लिखा गया कि सरकार द्वारा सैकड़ों निर्दोष प्रदर्शनकारियों का कत्ल करने के बाद मौलवियों की पगड़ी उतारना विरोध प्रदर्शन का नया तरीका बन गया है।

एक अन्य वीडियो में मौलवी को बीच सड़क से अपनी पगड़ी उठाते देखा जा रहा है। वीडियो शेयर करते हुए लोग लिख रहे हैं कि अब इन मौलवियों की पगड़ी उतार फेकना युवा ईरानी प्रदर्शनकारियों का रोज काम हो गया है। AlinejadMasih नाम की एक लड़की कहती है, अगर हम जबरदस्ती थोपे गए हिजाब को पहनने से इनकार करते हैं तो ईरान के ये मुल्ला हमारा सिर कलम कर देते हैं। इसलिए हम अपना गुस्सा दिखाने के लिए उनकी पगड़ी उतार रहे हैं। डेली टेलीग्राफ का हवाला देते हुए, द स्टफ ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि मौलवियों को पब्लिक में बेइज्जत होने का डर सता रहा है और इसी डर की वजह से वे अब सार्वजनिक रूप से अपनी पगड़ी और लबादा पहनने से बच रहे हैं।

गौरतलब है कि पुलिस की हिरासत में 22 वर्षीय महसा अमीनी की 16 सितंबर को मौत के बाद देशव्यापी विरोध प्रदर्शन शुरू हो गया। महिलाओं के लिए ईरान के सख्त ड्रेस कोड का कथित रूप से उल्लंघन करने के आरोप में अमीनी को हिरासत में लिया गया था। हालांकि, शुरुआत में विरोध प्रदर्शन ईरान में हिजाब पहनने की अनिवार्यता पर केंद्रित थे। बाद में प्रदर्शनों का सिलसिला बढ़ता गया और ये, 1979 की इस्लामी क्रांति के बाद सत्तारूढ़ शासकों के लिए सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक में बदल गए हैं। सुरक्षा बलों ने विरोध प्रदर्शनों के दौरान प्रदर्शनकारियों को तितर-बितर करने के लिए गोला-बारूद और आंसू गैस का इस्तेमाल किया। ईरान में मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के समूह के अनुसार, कम से कम 270 लोग मारे गए हैं और 14,000 लोग गिरफ्तार किए गए हैं। प्रदर्शन अब भी जारी हैं। इस बीच, अर्द्धसैन्य बल रिवोल्यूशनरी गार्ड ने भी युवाओं को प्रदर्शन के लिए चेताया है।

रूसी हमले के बाद कीव के 4.5 लाख घरों में अंधेरा, शहर में पानी सप्लाई ठप

कीव। रूस दिन पर दिन यूक्रेन पर हमले तेज करते जा रहा है। रूसी सेना की ओर से यूक्रेन की राजधानी कीव पर किए गए ताजा हमले में शहर के करीब पांच लाख घरों में अंधेरा छा गया है। रूसी सेना की ताबड़तोड़ स्ट्राइक की वजह से इन घरों में बिजली सप्लाई ठप हो गई है। अल जजीरा ने कीव के मेयर विटाली क्लिट्स्को के हवाले से यह सूचना दी है।

क्लिट्सको ने टेलीग्राम पर यूक्रेन के शहरों और नागरिकों पर रूसी मिसाइल हमलों की निंदा करते हुए कहा, राजधानी कीव में शुक्रवार को साढ़े चार लाख घरों में आज सुबह से बिजली सप्लाई ठप है। हाल के दिनों की तुलना में घरों की संख्या डेढ़ गुना अधिक है। यूक्रेन की परमाणु ऊर्जा एजेंसी ने गुरुवार को बताया थि कि रूस की ओर से किए गए हमले ने

जापोरिज्जिया परमाणु ऊर्जा संयंत्र को यूक्रेन ग्रिड से जोड़ने वाले बिजली आपूर्ति तंत्र को क्षतिग्रस्त कर दिया है। रूस की ओर से यूक्रेन के ऊर्जा क्षेत्रों को निशाना बनाए जाने पर राष्ट्रपति व्लादिमीर जेलेंस्की ने कहा कि यह दुश्मन की कमोजरी को बताता है। वे यूक्रेन को युद्ध के मैदान में नहीं हरा सकते हैं और इसलिए वे हमारे लोगों को इस तरह से तोड़ने की कोशिश कर रहे हैं। वहीं, सीएनएन ने क्लिट्स्को का हवाला देते हुए कहा कि यूक्रेन में बड़े पैमाने पर ब्लैकआउट की वजह से वहां के निवासियों को पानी के लिए गंभीर संकट का सामना करना पड़ रहा है। उन्होंने कहा कि स्ट्राइक की वजह से बिजली सप्लाई का एक बड़ा सिस्टम प्रभावित हुआ है। इसके जरि कीव में करीब साढ़े तान लाख अपार्टमेंट को बिजली सप्लाई होती है। उन्होंने कहा कि स्थिति को कंट्रोल में लाने के लिए हर संभव प्रयास किए जा रहे हैं।

आस्ट्रेलिया में आदिवासी लड़के की हत्या से उठा नस्लवाद का मुद्दा

पर्थ। ऑस्ट्रेलिया में तीन सप्ताह पहले स्कूल से घर लौटने के दौरान दो आदिवासी लड़कों पर हुए हमले और इनमें से एक की मृत्यु की घटना से देश में नस्लवाद का मुद्दा गर्मा गया है। बीबीसी की रिपोर्ट के मुताबिक आदिवासी नाबालिग कैसियस टर्वे पर्थ में अपने दोस्तों के साथ स्कूल से घर लौट रहा था। इसी दौरान अचानक एक अजनबी ने कथित तौर पर अपनी कार रोकी और लड़कों को भागने के लिए कहा। फिर उनका पीछा करने के बाद उन पर हमला कर दिया। हमले में गंभीर रूप से घायल कैसियस की 10 दिन बाद अस्पताल में मौत हो गयी। रिपोर्ट के मुताबिक पुलिस ने इस मामले में एक 21 वर्षीय श्वेत व्यक्ति जैक स्टेवन जेम्स बरेरले को गिरफ्तार किया गया है। जांच में जुटे अधिकारियों ने दावा किया है कि हमले से पहले पीड़ितों पर नस्लवाद से जुड़ी अभद्र टिप्पणी की गयी थी।

एलन मस्क ने शुरू की ट्विटर की सफाई, कई कर्मचारी हुए बाहर

लॉस एंजेल्स। माइक्रो ब्लॉगिंग साइट ट्विटर के नये मालिक एलन मस्क ने दुनिया भर में कर्मचारियों की छटनी का काम शुक्रवार को शुरू कर दिया। बीबीसी की रिपोर्ट में बताया गया कि दुनिया भर में ट्विटर के लिए काम करने वाले लोगों में से कुछ ने बताया कि उनके कंपनी लैपटॉप से उनको स्वत: ही लॉग आउट कर दिया गया है। सभी कर्मचारी शुक्रवार को प्रशांत समयानुसार सुबह 09 बजे तक ट्विटर पर आपकी भूमिका विषय के साथ एक ईमेल प्राप्त करने के लिए तैयार हैं। क्रिसमस के सात महीने पहले कंपनी के कर्मचारियों की एक भावनात्मक फीड हैशटैग वन टीम ट्विटर पर ट्रेंड कर रही है कि उन्होंने अपनी नौकरी खो दी है। इस पूरे मामले पर लोग आश्चर्य व्यक्त कर रहे हैं कि आखिर हो क्या रहा है तो कुछ खामोश हैं, कुछ उस समय क्षेत्र की सीमा में नहीं आने के कारण अभी कुछ भी पता नहीं होने की बात कह रहे हैं। ब्रिटेन में ट्विटरके वरिष्ठ सामुदायिक प्रबंधक सिमोन बैलमेन ने कहा कि उन्हें कंपनी से निकाल दिया गया है उनके लैपटॉप से वह लॉगआउट कर दिये गये हैं। हर किसी को ईमेल भेजा गया है कि नौकरी से लोगों को हटाया जायेगा। इसके एक घंटे बाद ही कर्मचारियों का लैपटॉप से लॉगआउट करना शुरू हो गया और उनकी जीमेल और स्लैक पर भी पहुंच खत्म कर दी गयी।

लाहौर हाईकोर्ट ने इमरान को पीटीआई अध्यक्ष पद से हटाने वाली याचिका स्वीकार की

लाहौर। लाहौर उच्च न्यायालय ने शुक्रवार को पाकिस्तान के पूर्व प्रधानमंत्री इमरान खान को संसद से अयोग्य ठहराए जाने के बाद पाकिस्तान तहरीक-ए-इंसाफी (पीटीआई) अध्यक्ष के पद से हटाने की मांग वाली एक याचिका पर सुनवाई के लिए स्वीकृति दे दी है। समाचार पत्र द डॉन ने यह जानकारी दी। द डॉन अखबार की रिपोर्ट के अनुसार अदालत ने गुरुवार को अधिवक्ता मोहम्मद अफाक द्वारा दायर याचिका की सुनवाई पर फैसला सुनाया। न्यायमूर्ति साजिद महमूद सेठी ने फैसला सुनाया और पंजाब के अटॉर्नी जनरल एवं महाधिवक्ता को नोटिस दिया। लाहौर उच्च न्यायालय ने ने प्रतिवादियों से भी 11 नवंबर तक जवाब मांगा है। रिपोर्ट के अनुसार याचिका की एक प्रति डॉनडॉटकॉम के पास उपलब्ध है। उत्तरदाताओं के रूप में इमरान खान, चुनाव आयोग, पाकिस्तान सरकार और अन्य के नाम शामिल हैं। अदालत में दी गयी दलील में तर्क दिया गया कि जनप्रतिनिधित्व अधिनियम 1976 और राजनीतिक दल आदेश 2002 के अनुसार पार्टी के पदाधिकारियों के लिए संविधान के अनुच्छेद 62 और 63 के अनुसार योग्यता प्राप्त करना एक कानूनी और संवैधानिक जरुरत है। उन्होंने तर्क दिया कि एक अयोग्य व्यक्ति किसी राजनीतिक दल का अध्यक्ष नहीं हो सकता है।

'अफ्रीका वापस जाओ' की टिप्पणी से फ्रांस की संसद में कामकाज ठप

पेरिस। फ्रांस की संसद में शुक्रवार को कामकाज उस समय ठप हो गया जब एक दक्षिणपंथी सांसद ने अफ्रीका वापस जाओ का नारा लगाया। सांसद ने जब नारा लगाया उस समय उनके अश्वेत सहयोगी आव्रजन के बारे में चर्चा कर रहे थे। इस तरह की टिप्पणी के खिलाफ उन पर प्रतिबंध लगाये जाने की संभावना है। नेशनल रैली (आरएन) के सदस्य ग्रेगोइरे डी फोरनास ने बाद में गुरुवार को कहा कि उनकी टिप्पणी का उद्देश्य खुद कार्लोस मार्टेंस बिलोंगो नहीं बल्कि समुद्र के रास्ते यूरोप पहुंचने की कोशिश कर रहे प्रवासियों पर था। बिलोंगो ने कहा कि उनका जन्म फ्रांस में हुआ है और यह टिप्पणी शर्मनाक है। बीबीसी के अनुसार प्रधान मंत्री एलिजाबेथ बोर्न ने कहा कि नस्लवाद के लिए कोई जगह नहीं है। लिबरल पार्टी के नेता ने संवाददाताओं से कहा कि फ्रांसीसी असेंबली नेशनेल ब्यूरो शुक्रवार को बैठक करेगा और आवश्यक प्रतिबंध पर पर फैसला करेगा। बिलोंगो हाल के दिनों में समुद्र में बचाए गए 234 प्रवासियों के लिए एसओएस भूमध्यसागरीय (एक गैर-सरकारी संगठन) के अनुरोध के बारे में सरकार से सवाल कर रहा थे।

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक, प्रवीण कुमार सिंह द्वारा आला प्रिंटिंग प्रेस 3636 कटारा दिना बेग लाल कुआं... से मुद्रित एवं , ब्लाक नं 23 मकान नं 399 त्रिलोक पुरी दिल्ली -91 से प्रकाशित
संपादकः प्रवीण कुमार सिंह, आरएनआई नं. ·DELHIN/2011/38334, किसी भी विवाद के लिए पीआरबी एक्ट अंतर्गत उत्तरदायी, टेलीफोन नं.: 011-26700510/11 , ई-मेल : info@gauravshalibharat.com, समस्त विवादो का न्यायलय दिल्ली होगा

तब बाढ़ में भी नहीं डूबेंगे धान के पौधे!

तेज बरसात की वजह से चावल के पौधे पानी में बिलकुल डूब जाते हैं। अब जापानी वैज्ञानिकों ने ऐसे जीनों का पता लगाया है जिनके जरिए चावल के पौधे का विकास इस तेजी से बढ़ाया जा सकता है कि वह पानी में डूबे ही नहीं।

भारत में चावल उगाने वाले किसान जहां बरसात के लिए तरसते हैं, वहीं उससे बहुत डरते भी हैं। उनके मन में कई सवाल होते हैं, क्या बरसात ठीक वक्त पर आएगी, ज़्यादा तेज और लंबी तो नहीं होगी, कितनी बार फसल बरसात की वजह से खराब हो जाती है और हज़ारों किसानों के लिए भारत में ही नहीं, बल्कि पाकिस्तान, बांग्लादेश और दूसरे एशियाई देशों में भी गुजारा करना मुश्किल हो जाता है।

अक्सर यह देखा गया है कि तेज बरसात की वजह से चावल के पौधे पानी में बिलकुल डूब जाते हैं। खेतों मे बढ़ता हुआ जलस्तर चावल के पौधों के लिए सामान्?यत- अच्छा ही रहता है, लेकिन यह ज़रूरी है कि पौधे के उपरी हिस्से हवा के संपर्क में बने रहें। हालांकि मानसूनी इलाकों में बरसात और बाढ की वजह से चावल के खेतों में पानी इतना ज्?यादा भर जाता है कि धान के पौधे बिल्कुल डूब जाते हैं तथा इससे वे सड़ने लगते हैं और मर भी जाते हैं।

गौरतलब है कि गहरे पानी में उगनेवाले चावल की प्रजाति को जलजमाव से कोई समस्या नहीं होती। पानी के साथ-साथ उसके तने वाले डंठल भी बढ़ते जाते हैं।

जापान के नागोया विश्वविद्यालय के मोतोयुकी अशिकारी कहते हैं-

गहरे पानी में उगने वाले चावल के पौधे, पानी की गहराई से ऊपर बने रहने के लिए, एक मीटर तक बढ़ सकते हैं। वे हवा के संपर्क में बने रहने के लिए ऐसा करते है। वे अंदर से खोखले होते हैं, लेकिन उसके जरिए पौधा पानी की सतह से उपर पहुंच सकता है और ऑक्सीजन पा सकता है। यह कुछ ऐसा ही है कि जब आप गोताखोरी कर रहे होते हैं, तो पानी से ऊपर निकली एक नली से सांस लेते हैं।

बरसात के समय ऐसे चावल के तने 25 सेंटीमीटर प्रतिदिन की एक अनोखी गति से बढ़ सकते हैं। अशिकारी और उनकी टीम ने इस प्रक्रिया को समझने के लिए इस चावल के जीनों से यह समझने की कोशिश की कि चावल बरसात के वक्त अपने विकास को किस तरह नियंत्रित करता है। अध्ययनों से अब तक जितना पता चला है वह यह है कि एक गैसीय विकास-हॉर्मोन एथीलिन इसके लिए जिम्मेदार है, जैसाकि नीदरलैंड के उएतरेश्त विश्वविद्यालय के रेंस वोएसेनेक बताते हैं-

जब पौधा पूरी तरह पानी में डूब जाता है तब यह गैस ठीक तरह से मुक्त नहीं हो पाती। यू कहें कि वह पौधे में ही कैद हो जाती है। यानी पौधे में एथिलिन की मत्रा बढ़ने लगती है। यह पौधे के लिए संकेत है कि वह पानी में डूब रहा है और उसे कुछ करना है।

जापानी विशेषज्ञों ने पता लगाने की कोशिश की कि कौन से जीन इस स्थिति में सक्रिय होते हैं। उन्होने ऐसे जीन पाए जिनको वे गोताखोरी में इस्तेमाल होनेवाली नली के अनुरूप स्नोर्कल जीन कहते हैं। ये जीन तभी सक्रिय होते हैं जब पौधे के तने में एथिलिन की मात्रा बढ़ने लगती है। वे पौधे के विकास को तेज करने वाले दूसरे तत्वों का उत्पादन शुरू कर देते हैं। मोतोयुकी अशिकारी कहते हैं-

हमने क्रॉमोसोम 1,3 और 12 पर यह तथाकथित नलिका जीन पाए। उन्हें यदि सामान्य चावल के पौधों में भी मिलाया जा सके, तो बरसात के वक्त सामान्य चावल के पौधे भी वही करेंगे जो गहरे पानी में उगने वाला चावल करता है। मुझे पूरा विश्वास है कि हम चावल की हर प्रजाति को गहरे पानी में उगने वाले चावल की प्रजाति बना सकते हैं।

यानी इन जीनों की मदद से चावल की उस फसल को बचाया जा सकता है जो पानी की अधिकता के प्रति बहुत संवेदनशील है। जहां अक्सर बाढ आती है वहां के किसानों की इस बड़ी समस्या का समाधान हो सकता है। एक और समस्या भी दूर हो सकती है - गहरे पानी में उगने वाला चावल बहुत ही कम फसल देता है, प्रति हेक्टेयर सिर्फ एक टन जो उपजाऊ क़िस्मों की तुलना में सिर्फ 20 फीसदी के बराबर है। नीदरलैंड के विशेषज्ञ रेंस वोएसेनेक बहुत ही आशावादी हैं-

विकास के लिए जिम्मेदार इन जीनों के बारे में पता चल जाने के बाद अब हम चावल की अलग-अलग प्रजातियों के बीच प्रकृतिक संवर्धन के जरिए, यानी वर्णसंकर के जरिए भी इन जीनों को उनके पौधे में डाल सकते हैं। इसके लिए किसी जीन तकनीक जरूरत ही नहीं हैं।

जापान के विशेषज्ञों ने यह काम शुरू कर भी दिया है। उनके अध्ययनों से एक बार फिर पता चलता है कि पौधों के संवर्धन के लिए उनके जीनों में असामान्य गुणों की तालाश कितनी जरूरी है।

कुदरती खेती का एक अनूठा प्रयोग

भारत एक कृषि प्रधान देश है। प्रकृति की कृपा तथा हमारे किसानों कि आर्थिक मेहनत से हमारी भूमि सदा उपजाऊ रही है। प्राचीन समय में हमारी खेती प्राकृतिक संपदा व संसाधनों पर ही निर्भर थी और देश की खाद्यान्नों सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा कर पाती थी। जैसे-जैसे देश में शहरीकरण व औद्योगिकरण बढते गये , गांवों से लोग खेती को छोड़ शहरों की ओर आते गये। प्राकृतिक खेती पध्दति कम होती गई और रासायनिक खाद आदि का प्रयोग बढता गया। ज़मीन की उत्पादकता घटती गई और साथ ही किसान की आय भी। सन 1965 में भारत में हरित क्रांति आयी जिससे उपज तो बढी मगर रासायनिक उरवरक तथा अन्य उत्पादों के अन्धाधुन्ध प्रयोग से मिटटी की उत्पादकता भी कम होती गयी।

यूरोप, अमरीका व एशिया में सन् 1940-50 के दकों में जैविक खेती और प्राकृतिक खेती की प्रक्रियाओं पर बहुत प्रयोग किये गये। खेती कि ये विधायें भारत में सन 1980 के दशक से आगे बढी हैं। जैविक खेती की पद्धति में रासायनिक पध्दाथों का प्रयोग वर्जित है। प्राकृतिक खेती में केवल प्राकृतिक प्रक्रियाओं व संसाधनों का ही प्रयोग होता है। आधुनिक खेती या रासायनिक खेती प्रकृति के खिलाफ है। रासायनिक खादों व कीटनाशकों से हमारे खेतों की मिट्ठी की उर्वरता खत्म हो रही है। मिट्ठी में मौजूद सूक्ष्म जीवाणु और जैव तत्त्व मर रहे हैं और वह बंजर हो जाती है। कुदरती खेती प्रकृति के साथ होती है। यद्यपि प्राकृतिक खेती की शुरूआत जापान के कृषि वैज्ञानिक फुकुओवा ने की है लेकिन हमारे यहां भी ऐसी खेती होती रही है। मंडला के बैगा आदिवासी बिना जुताई की खेती करते हैं जिसे झूम खेती कहते हैं।

भारत के मध्य प्रदेश राज्य के होशंगाबाद ज़िले के एक फार्म मे लगभग पिछ्ले 25 वर्षों से प्राक्रतिक खेती, जिसे कुदरती खेती भी कहते है, हो रही है। करीब 12 एकड़ के इस फार्म में सिर्फ 1 एकड़ में खेती की जा रही है। यहां बिना जुताई (नो टिलिग) और रासायनिक खाद के खेती की जा रही है। बीजों को मिट्ठी की गोली बनाकर बिखेर दिया जाता है और वे उग आते हैं। यह सिर्फ खेती की एक पद्धति भर नहीं है बल्कि जीवनशैली है। यहां का अनाज, फल पानी और हवा शुध्द है। यहा कुआं है, जिसमें पर्याप्त पानी है। बिना जुताई के खेती मुश्किल है, ऐसा लगना स्वाभाविक है। पहली बार सुनने पर विश?वास नहीं होता लेकिन देखने के बाद सभी शंकाएं निर्मूल हो जाती हैं। दरअसल, इस पर्यावरणीय पद्धति में मिट्ठी की उर्वरता उत्तारोतर बढ़ती जाती है।

बाकी के 11 एकड़ में सुबबूल (आस्टेलियन अगेसिया) का जंगल है। सुबबूल एक चारे की प्रजाति है। इस जंगल से मवेशियों का चारा और लकड़ियां मिल जाती हैं। लकड़ियों की टाल है, जहां से जलाऊ लकड़ी बिकती हैं, जो फार्म की आय का मुख्य स्रोत है। एक एकड़ जंगल से हर वर्ष करीब ढाई लाख रूपये की लकड़ी बेच लेते हैं।

गेहूं के खेतों में हवा के साथ गेहूं के हरे पौधे लहलहाते हैं। खेत में फलदार और अन्य जंगली पेड़ हैं जिनके नीचे गेहूं की फसल होती है। आम तौर पर खेतों में पेड़ नहीं होते हैं लेकिन यहां अमरूद, नीबू और बबूल के पेड़ हैं जिन के कारण खेतों में गहराई तक जड़ों का जाल बुना रहता है। इससे भी जमीन ताकतवर बनती जाती है। अनाज और फसलों के पौधे पेड़ों की छाया तले अच्छे होते हैं। छाया का असर जमीन के उपजाऊ होने पर निर्भर करता है। चूंकि यहां जमीन की उर्वरता अधिक है, इसलिए पेड़ों की छाया का फसल पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता।

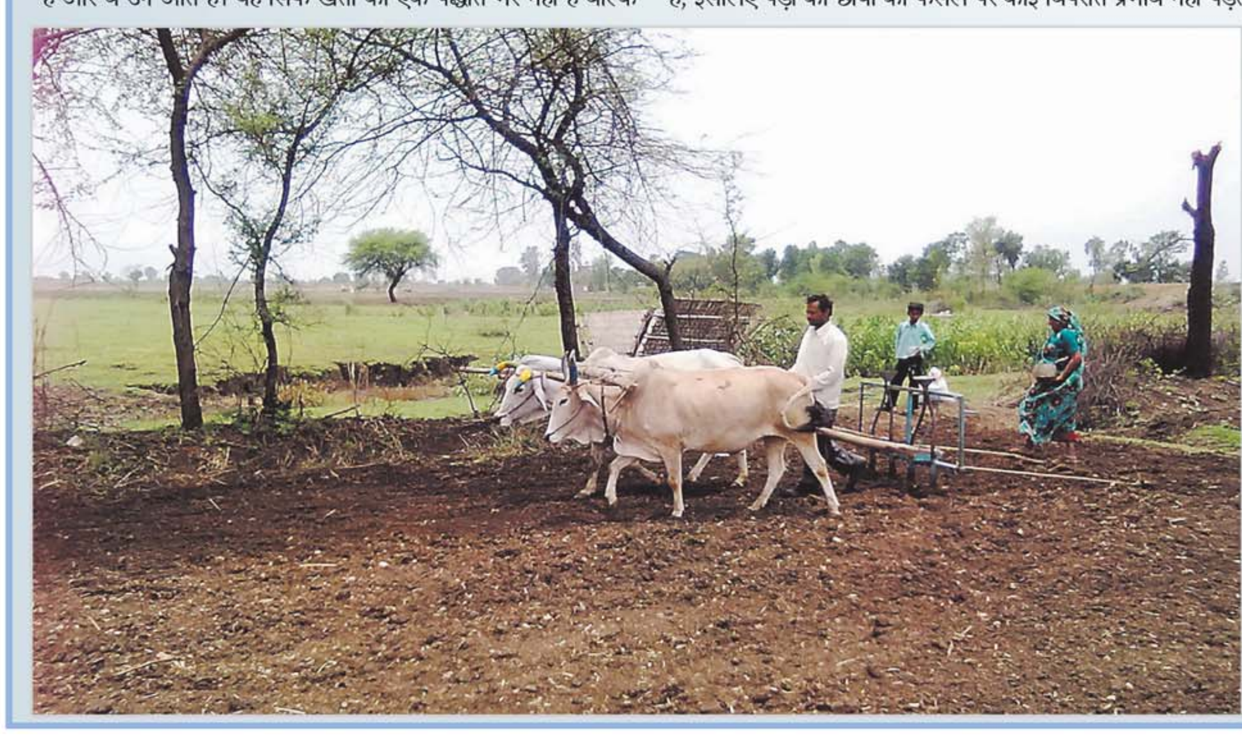

इन खेतों में पुआल, नरवाई, चारा, तिनका व छोटी-छोटी टहनियों को पड़ा रहने देते हैं, जो सड़कर जैव खाद बनाती हैं। खेत में तमाम छोटी-बड़ी वनस्पतियों के साथ जैव विविधताएं आती -जाती रहती हैं। और हर मौसम में जमीन ताकतवर होती जाती है। इस जमीन में पौधे भी स्वस्थ और ताकतवर होते हैं जिन्हें जल्द बीमारी नहीं घेरती।

यहां जमीन को हमेशा ढककर रखा जाता है। यह ढकाव हरा या सूखा किसी भी तरह से हो, इससे फर्क नहीं पड़ता। इस ढकाव के नीचे अनगिनत जीवाणु, केंचुए और कीड़े-मकोड़े रहते हैं और उनके ऊपर-नीचे आते-जाते रहने से जमीन पोली और हवादार व उपजाऊ बनती है।

आमतौर पर किसान अपने खेतों से अतिरिक्त पानी को नालियों से बाहर निकाल देते हैं लेकिन यहां ऐसा नहीं किया जाता। बारिश में कितना ही पानी गिरे, वह खेत के बाहर नहीं जाता। खेतों में जो खरपतवार, ग्रीन कवर या पेड़ होते हैं, वे पानी को सोखते हैं। इससे एक ओर खेतों में नमी बनी रहती है, दूसरी ओर वह पानी वाश?पीकृत होकर बादल बनता है और बारिश में पुन् बरसता है। इसके विपरीत, जब जमीन की जुताई की जाती है और उसमें पानी दिया जाता है तो खेत में कीचड़ हो जाती है। बारिश होती है तो पानी नीचे नहीं जा पाता और तेजी से बहता है। पानी के साथ खेत की उपजाऊ मिट्ठी बह जाती है। इस तरह हम मिट्ठी की उपजाऊ परत को बर्बाद कर रहे हैं और भूजल का पुनर्भरण भी नहीं कर पा रहे हैं। साल दर साल भूजल नीचे चला जा रहा है।

यहां खेती भोजन की जरूरत के हिसाब से होती हैं, बाजार के हिसाब से नहीं। जरूरत एक एकड़ से ही पूरी हो जाती है। यहां से अनाज, फल और सब्जियां मिलती हैं, जो परिवार की जरूरत पूरी कर देती हैं। जाड़े मे गेहूं, गर्मी में मक्का व मूंग और बारिश में धान की फसल ली जाती है। कुदरती खेती में भूख मिटाने के साथ समस्त जीव-जगत के पालन का विचार है। इससे मिट्ठी-पानी का संरक्षण होता हैं। इसे ऋषि खेती भी कहते हैं क्योंकि ऋषि मुनि कंद-मूल, फल और दूध को भोजन के रूप में ग्रहण करते थे, बहुत कम जमीन पर मोटे अनाजों को उपजाते थे। वे धरती को अपनी मां के समान मानते थे, उससे उतना ही लेते थे जितनी जरूरत थी। अत- कुदरती खेती का यह प्रयोग सराहनीय होने के साथ-साथ अनुकरणीय भी है।